सहजानंद शास्त्रमाला

मोक्षशास्त्र प्रवचन

नवम भाग

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी ''सहजानन्द'' महाराज

प्रकाशक

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास गांधीनगर,इन्दौर

Online Version : 001

प्रकाशकीय

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला सदर मेरठ द्वारा पूज्य वर्णीजी के साहित्य प्रकाशन का गुरूतर कार्य किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक **'मोक्षशास्त्र प्रवचन नवम भाग'** अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी की सरल शब्दों व व्यवहारिक शैली में रचित पुस्तक है एवं सामान्य श्रोता/पाठक को शीघ्र ग्राह्य हो जाती है। इसमें मोक्षशास्त्र के सूत्र 21 से सूत्र 30 तक प्रवचन संकलित हैं।

ये ग्रन्थ भविष्य में सदैव उपलब्ध रहें व नई पीढ़ी आधुनिकतम तकनीक (कम्प्यूटर आदि) के माध्यम से इसे पढ़ व समझ सके इस हेतु उक्त ग्रन्थ सहित पूज्य वर्णीजी के अन्य ग्रन्थों को http://www.sahjanandvarnishastra.org/ वेबसाइड पर रखा गया है। यदि कोई महानुभाव इस ग्रन्थ को पुन: प्रकाशित कराना चाहता है, तो वह यह कंप्यूटर कॉपी प्राप्त करने हेतु संपर्क करे । इसी ग्रन्थ की PDF फाइल http://is.gd/varniji पर प्राप्त की जा सकती है।

इस कार्य को सम्पादित करने में **श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास गांधीनगर** इन्दौर का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु **डॉ. उदयजी मेहता सीएटल अमेरिका** के द्वारा रु. 750/- प्राप्त हुए, तदर्थ हम इनके आभारी हैं। ग्रन्थ के टंकण कार्य में **श्रीमती मनोरमाजी राहिंज, गांधीनगर** एवं प्रूफिंग करने हेतु **श्रीमती मनोरमाजी जैन, गांधीनगर** का सहयोग रहा है — हम इनके आभारी हैं।

सुधीजन इसे पढ़कर इसमें यदि कोई अशुद्धि रह गई हो तो हमें सूचित करे ताकि अगले संस्करण (वर्जन) में त्रुटि का परिमार्जन किया जा सके।

विनीत

विकास छाबड़ा

53, मल्हारगंज मेनरोड़

इन्दौर (म०प्र०)

Phone-0731-2410880, 9424414796

Email-vikasnd@gmail.com

www.jainkosh.org

शान्तमूर्तिन्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी‘‘सहजानन्द’’ महाराज द्वारा रचित

आत्मकीर्तन

हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम। ज्ञाता दृष्टा आतमराम।।टेक।।
मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह राग वितान।।
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।
किन्तु आशावश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान।।
सुख दुःख दाता कोई न आन, मोह राग रूष दुःख की खान।
निज को निज पर को पर जान, फिर दुःख का नहीं लेश निदान।।
जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्यागि पहुँचू निजधाम, आकुलता का फिर क्या काम।।
होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, ’सहजानन्द’ रहूँ अभिराम।।
अहिंसा परमोधर्म

आत्म रमण

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हूँ, मैं सहजानन्दस्वरूपी हूँ।।टेक।।
हूँ ज्ञानमात्र परभावशून्य, हूँ सहज ज्ञानघन स्वयं पूर्ण।
हूँ सत्य सहज आनन्दधाम, मैं दर्शन० ,मैं सहजानंद०।।१।।
हूँ खुद का ही कर्ता भोक्ता, पर में मेरा कुछ काम नहीं।
पर का न प्रवेश न कार्य यहाँ, मैं दर्शन० ,मैं सहजा०।।२।।
आऊं उतरूं रम लूं निज में, निज की निज में दुविधा ही क्या।
निज अनुभव रस से सहज तृप्त, मैं दर्शन० ,मैं सहजा०।।३।।

Contents

प्रकाशकीय.....2

आत्मकीर्तन.....3

आत्म रमण.....3

सूत्र 21.....5

सूत्र 22.....10

सूत्र 23.....18

सूत्र 24.....21

सूत्र 25.....22

सूत्र 26.....24

सूत्र 27.....25

सूत्र 28.....27

सूत्र 29.....27

सूत्र 30.....30

मोक्षशास्त्र प्रवचन नवम भाग

मोक्षमार्गस्य नेत्तारं भेत्तारं कर्मभूभृतां।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानाम् बन्दे तद्गुणलब्धये।।

प्रत्यक्षज्ञानों के वर्णन का प्रारम्भ—अब प्रत्यक्षज्ञानों में सर्वप्रथम अवधिज्ञान का वर्णन कर रहे हैं। अवधिज्ञान का भेद प्रभेद पूर्वक वर्णन चलेगा । इस कारण प्रथम कुछ उसके भेद प्रभेद जानना आवश्यक है । अवधिज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—(१) भवप्रत्ययक अवधिज्ञान और (२) क्षयोपशमप्रत्ययक अवधिज्ञान । भवप्रत्ययक अवधिज्ञान उसे कहते हैं कि जो अवधिज्ञान अपने योग्य नियत भव को पाकर नियम से उत्पन्न ही हो । चाहे वह सम्यग्ज्ञान रूप हो, चाहे मिथ्याज्ञान रूप हो, पर उस भव में अवधिज्ञान होता ही है । ऐसा होने पर भी अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम भी आवश्यक ही है । सो वहां होता ही है । दूसरा अवधिज्ञान है क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान । याने जो अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम का निमित्त पाकर हो उसे कहते है क्षयोपशमनिमित्तक याने भव कारण नहीं है । इनमे से क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान के तीन भेद हैं—देशावधि, सर्वावधि और परमावधि । देशावधि अवधिज्ञान भवप्रत्ययक भी है और क्षयोपशमनिमित्तक भी होता है । सर्वावधि और परमावधि ज्ञान भवप्रत्ययक नहीं होता । इसी प्रकार अवधिज्ञान के भी प्रकार से भेद प्रभेद, हैं, जो कि सूत्र के प्रकरण में वर्णित किये जायेंगे । अब यहाँ प्रथम भवप्रत्यय अवधिज्ञान का वर्णन कर रहे हैं ।

सूत्र 21

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ।।२१।।

भवप्रत्यय अवधिज्ञान की भवप्रत्ययता—भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है अर्थात् देवगति में जिसका जन्म हो और नरकगति में जिसका जन्म हो, ऐसे जीवों के अवधिज्ञानावरण का यथासम्भव क्षयोपशम होता ही है और उस भव में वे जीव नियम से अवधिज्ञान प्राप्त करते हैं, इसी कारण इसको भवप्रत्यय अवधिज्ञान कहते हैं । भव का अर्थ क्या है ? आयुकर्म और नामकर्म के उदयविशेष से जो आत्मा का पर्याय होता है उसे भव कहते है । भव में मुख्य कारण आयुकर्म और नामकर्म का उदयविशेष है, पर साथ ही अनेक कारणों की अपेक्षा होती है । उस भव की जहां प्रत्यय है अर्थात निमित्त है उसे भवप्रत्यय अवधिज्ञान कहते हैं । प्रत्यय शब्द के अनेक अर्थ होते हैं, लेकिन विवक्षावश उसका अर्थ लगाया जाता है । जैसे प्रत्यय का अर्थ ज्ञान भी है । जैसे अर्थ और शब्द का प्रत्यय करना याने ज्ञान करना । प्रत्यय का अर्थ शपथ लेना भी है । जैसे कहते हैं कि इसने अमुक पाप के त्याग का प्रत्यय किया है, याने जैसे किसी को दोष कोई लोग लगायें, दूसरे का धन चुराने का कोई आरोप करे तो कोई कहता है कि अजी यह तो चोरी के त्याग का प्रत्यय किए हुए है । तो प्रत्यय का अर्थ कहीं शपथ ग्रहण करना है, कहीं प्रत्यय का अर्थ हेतु लिया जाता, कारण लिया जाता । जैसे कहते कि संस्कार अविद्याप्रत्ययक होता है । अर्थात् अज्ञान के कारण से संस्कार होता है । इस तरह भवप्रत्यय शब्द से यह ध्वनित हुआ कि देव और नारकियों के उस भव में अवधिज्ञान होता ही है ।

भवप्रत्ययक अवधिज्ञान में भी अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम की अनिवार्यता होने पर भी भवप्रत्ययकता होने के कारण—अब यहाँ एक आशंका होती है कि भवप्रत्ययक अवधिज्ञान जो कहा है सो क्या उसमें अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम की आवश्यकता नहीं है । उत्तर यह है कि अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम तो अंतरंग कारण है याने अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम हुए बिना तो अवविज्ञान हो ही नहीं सकता । वह तो एक अंतरंग और साधारण कारण है याने सर्वत्र अवधिज्ञान में अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम होता ही है । फिर भी एक यह विशेषता बताने के लिए कि एक देव और नारकी का भव ऐसा है कि उस भव में अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम होता है और अवधिज्ञान होता है । यदि अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम बिना देव और नरकगति में अवधिज्ञान होने लगे तब तो यह आपत्ति होगी । यह प्रसंग आयेगा कि सभी देव और नारकियों में फिर तो एक समान अवधिज्ञान होना चाहिए, लेकिन ऐसा वहाँ नहीं है । कम अधिक अवधिज्ञान पाये जाते हैं । तब फिर यह पूछा जा सकता कि फिर भव कारण क्या रहा? जब अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम के अनुसार अवधिज्ञान की विशेषता है तो उसमें भव की बात क्या रही? सो उसका उत्तर यह है कि तिर्यच और मनुष्यों के तो कुछ न कुछ व्रत नियम आदिक होने के कारण अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम और अवधिज्ञान होता है, परन्तु देव और नारकी के व्रत, तप आदिक नहीं होते, क्योंकि देव और नारकियों के अधिक से अधिक चौथा गुणस्थान कहा गया है । सदा वे असंयमी रहते हैं । तो व्रत, नियम आदिक का वहाँ अभिप्राय भी नहीं होता । वहाँ तो भव को निमित्त करके इस ही प्रकार का कर्मोदय है कि संयम नहीँ हुआ करता । तब फिर वहाँ बाह्यसाधन क्या है? सो तो कुछ है नहीं, याने मनुष्य और तिर्यञ्चों के बाह्यसाधन तो व्रत, नियम आदिक हैं, जिनकी विशेषता पाकर यथासम्भव योग्यता से अवधिज्ञान बनता है । तो जब बाह्यसाधन व्रत, नियम आदिक देव और नारकियों के नहीं हैं तब भव ही एक बाह्यसाधन है, यह बात अपने आप सिद्ध होती है । इसी कारण से देव और नारकियों के अवधिज्ञान को भवप्रत्ययक अवधिज्ञान कहा गया है ।

समस्त देव नारकियों में सुअवधिज्ञान न होने का कारण—अब यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि जब बाह्य साधन तो हैं नहीं, केवल भव का ही निमित्त पाकर होता है तब तो देव और नारकियों के अवधिज्ञान जैसे कहा तो मिथ्यादृष्टियों के भी अवधिज्ञान ही बनेगा । सो यह जिज्ञासा इस तरह शान्त करनी चाहिए कि देखो यह प्रकरण है सम्यक्ज्ञान के अधिकार का याने वस्तु का स्वरूप कहा जाता है, तो उसके साधन बताये जा रहे हैं । प्रमाण और नयों से वस्तु का अधिगम होता है । तो वस्तु की यथार्थ जानकारी सम्यग्ज्ञान से ही तो हो सकेगी । समस्त वर्णन इस प्रसंग में सम्यग्ज्ञान का चल रहा । मिथ्यादृष्टि जीव के अवधिज्ञान नहीं होता, किन्तु कुअवधिज्ञान, जिसका दूसरा नाम है विभंग अवधिज्ञान, वह होता है । तब यह विभाग करना चाहिए कि देव और नारकियों में सम्यग्दृष्टियों के तो अवधिज्ञान होता है और मिथ्यादृष्टियों के कुअवधिज्ञान होता है । तो पूर्व सम्बन्ध से यहाँ यह समझना चाहिए कि यह सम्यग्ज्ञान का प्रकरण है अथवा इस तरह भी समझ सकते हैं कि कुछ आगे चलकर यह कहा जायेगा इसी अध्याय में कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान ये विपरीत भी होते है—तो जब आगे विपर्यय का संकेत किया है तो उससे पहले-पहले यह सिद्ध हो जाता है कि यह सब सम्यग्ज्ञान का प्रकरण है ।

देव नारकाणां शब्द में देव शब्द को प्रथम कहने का कारण—अब यहाँ एक आशंका होती है कि आगम में जब भी गति के भेद कहे गए हैं तो नरकगति से शुरू किया गया । गतियां चार होती है—(१) नरक, (२) तिर्यञ्च, (३) मनुष्य और (४) देव । तो जब नरक शब्द का प्रथम ही कथन होता है तो इस सूत्र में नरक शब्द को पहले रखना था याने भवप्रत्यय अवधिज्ञान नारकी और देवों के होता है, ऐसा ही सूत्र बनाते, देव नारकाणां कहने के बजाये नारक देवाणां, ऐसा कहना था । इस शंका का समाधान करते हैं कि देखिये शब्दों के पूर्व निपात करने के मुख्य दो कारण हुआ करते हैं । एक तो थोड़े स्वर होना, दूसरा कुछ महिमा वाला होना । सो दोनों ही बातें देव शब्द में घटित होती हैं । देव शब्द में दो स्वर हैं जो कि तीन भाषाओं में है, और नारक शब्द में तीन स्वर हैं जो कि चार मात्राओं में हैं । तो थोड़े स्वर देव शब्द में मिले, इस कारण से देव शब्द को पहले रखा गया है । लोकप्रवृत्ति भी ऐसी ही देखी जाती है । अगर दो-तीन बच्चों का नाम लेना है तो जिस बच्चे के नाम में बहुत थोड़े शब्द होते हैं उसका नाम पहले लिया जाता है । ऐसी प्राकृतिक बात भी है । तो इस ही कारण देव शब्द यहां पहले रखा है । दूसरा कारण यह है कि देव की महिमा अधिक है । लौकिक जन भी देवगति को महिमा गाते हैं और देव होने की वाञ्छा भी रखा करते हैं और प्रयोग में भी देवगति के जीवों के सुख विशेष हैं उनको समवशरण में जाना और अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दना करना आदिक सुविधायें प्राप्त है, इसलिए देव अभ्यर्हित याने महिमा वाले हैं इस कारण से देव शब्द ही पूर्व में प्रयोग करने के योग्य है ।

भवनवासी, व्यंतर व ज्योतिषी देवों के जघन्य व उत्कृष्ट अवधिज्ञान की सीमा—अब इन देव नारकियों के अवधिज्ञान किस-किस प्रकार कम बढ़ होता? इस विषय में सर्वप्रथम देवों का अवधिज्ञान देखिये कि किसका कितना अवधिज्ञान होता है ? देव चार निकायों में विभक्त है—१) भवनवासी (२) व्यन्तर (३) ज्योतिषी, और (४) वैमानिक । भवनवासी १० प्रकार होते हैं—असुरकुमार, नागकुमार आदिक । तो जिनमें दोनों प्रकार के इन भवनवासियों के जघन्य अवधिज्ञान २५ योजन होता है याने कम से कम २५ योजन तक की बात को ये जान लेते है । उत्कृष्ट अवधिज्ञान में असुरकुमार के भवनवासियों का असंख्यात कोड़ा-कोड़ी योजन है, याने असुरकुमार भवनवासी देव अवधिज्ञान से इतने बड़े दूर तक याने असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन तक जानेंगे, नीचे जानेंगे । ऊपर की और नहीं है इतना ऊँचा अवधिज्ञान, और ऊपर जानेंगे तो ऋजुविमान के ऊपर तक ही जानेंगे याने इस मध्यलोक में जो सुमेरुपर्वत है उसकी चोटी जहां समाप्त होती है वहाँ प्रथम कल्प का प्रथम विमान ऋजुविमान है । तो ऋजुविमान का जो ऊपरी हिस्सा है वहाँ तक जानेंगे, पर शेष के नागकुमार आदिक ९ प्रकार तो भवनवासी उनका अवधिज्ञान उत्कृष्ट तो असंख्यात योजन है सो वह नीचे है । ऊपर तो केवल सुमेरुपर्वत की चूलिका तक है, याने मध्यलोक तक ही इनका अवधिज्ञान ऊपर चलता है, नीचे विशेष है । और अगल-बगले याने पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर की ओर असंख्यात योजन है । भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी—ये तीन देव खोटे देव माने गए हैं अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्व में मरण कर इन तीन प्रकार के देवों में उत्पन्न नहीं होते । हाँ उत्पन्न हुए बाद पौरुषबल से इनके सम्यग्दर्शन हो सकता है । अब व्यन्तरों में कैसा अवधिज्ञान होता है? तो व्यन्तर होते हैं ८ प्रकार के—(१) किन्नर, (२) कुम्पुरुष, (३) महोरग, (४) गंधर्व, (५) यक्ष, (६) राक्षस, (७) भूत, (८) पिशाच । तो इन ८ प्रकार के देवों का जघन्य अवधिज्ञान तो २५ योजन हैं,

जैसा कि भवनवासियों का भी है, अच्छा और उत्कृष्ट अवधिज्ञान इनके असंख्यात हजार योजन है याने ये असंख्यात हजार योजन तक की घटनायें जान लेते हैं, किन्तु यह उत्कृष्ट अवधिज्ञान नीचे की ओर है ।

यहाँ एक बात और विशेष समझनी कि यह अवधिज्ञान शब्द ही यह बतला रहा है कि जो ज्ञान नीचे-नीचे अधिक-अधिक अवधि रखे उसे अवधिज्ञान कहते हैं । आठों प्रकार के व्यंतरों का जघन्य अवधिज्ञान २५ योजन तक का है व इन ही व्यन्तरों का उत्कृष्ट अवधिज्ञान असंख्यात हजार योजन का विषय वाला है और ऊपर में अपने ही विमान से अपर पर्यन्त मायने जो जिस विमान में रह रहा है, जिस आवास में रहता है उस आवास के ऊपर तक ही जान पाता है और व्यन्तरों का पूर्व पश्चिम आदिक दिशाओं में असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन है । ज्योतिषी देवों का जघन्य अवधिज्ञान संख्यात योजन तक का है और वह नीचे की ओर है तथा नीचे ही उत्कृष्ट अवधिज्ञान असंख्यात हजार योजन तक का है और ऊपर अपने विमान के ऊपर पर्यन्त और तिर्यक् रूप में असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन है ।

कल्पोपपन्न वैमानिक देवों के जघन्य व उत्कृष्ट अवधिज्ञान की सीमा—अब वैमानिक देवों की चर्चा सुनो—- वैमानिक देव दो भागों में विभक्त हैं, (१) कल्पोपपन्न, (२) कल्पातीत । सोलह स्वर्ग को कल्प कहते हैं । सोलह स्वर्गों में उत्पन्न हुए देवों का नाम कल्पोपपन्न है और सोलह स्वर्गों से ऊपर जो नवग्रैवेयक, ९ अनुदिश और ५ अनुत्तर विमान हैं, इनमें उत्पन्न हुए देवों का नाम है कल्पातीत । तो प्रथम कल्पोपपन्न देवों की बात कही जा रही है । इन वैमानिकों में सौधर्म और ईशान दो स्वर्गों के देवों का जघन्य अवधिज्ञान तो उतना है जितना कि ज्योतिषी देवों का उत्कृष्ट अवधिज्ञान है अर्थात् असंख्यात हजार योजन प्रमाण तक जघन्य अवधिज्ञान जानता है और इन दो स्वर्गों के देवों का उत्कृष्ट अवधिज्ञान रत्नप्रभा नाम की पहली पृथ्वी के नीचे तक, है, याने पहले नरक तक है । तीसरे और चौथे स्वर्ग के देवों का जघन्य अवधिज्ञान तो उतना है जितना प्रथम द्वितीय स्वर्ग के देवों का उत्कृष्ट अवधिज्ञान याने इनका जघन्य अवधिज्ञान पहली पृथ्वी के नीचे तक है और उत्कृष्ट अवधिज्ञान दूसरी पृथ्वी के नीचे तक है, याने तृतीयं चतुर्थ स्वर्ग के देव अधिक से अधिक दूसरे नरक तक की बात जान लेते हैं । ५वें, ६वें, ७वें, ८वें स्वर्ग के देवों का जघन्य अवधिज्ञान उतना है जितना कि तृतीय, चतुर्थ स्वर्ग के देवों का है, याने जघन्य रूप से ये द्वितीय पृथ्वी के नीचे तक का हाल जानते हैं और उत्कृष्ट अवधिज्ञान तीसरे नरक के नीचे तक का जान लेता है । ९वें, १०वें, ११वें, १२वें स्वर्ग के देवों का जघन्य अवधिज्ञान तृतीय पृथ्वी के नीचे तक है और उत्कृष्ट अवधिज्ञान चौथी पृथ्वी के नीचे तक है । १३वें, १४वें, १५वें, १६वें स्वर्ग के देवों का जघन्य अवधिज्ञान चौथे नरक के नीचे तक है और उत्कृष्ट अवधिज्ञान ५वीं पृथ्वी के नीचे तक है । सीता जी का जीव १६वें स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुआ, जो कि अब भी १६वें स्वर्ग का प्रतीन्द्र है । वह लक्ष्मण और रावण के जीव से मिलने के लिए नरक में गया था और वहाँ उन दोनों आत्माओं को समझाया । लक्ष्मण और रावण ये दोनों जीव नरक में थे । वहाँ सीता के जीव ने सम्बोधा । ये दोनों भव्य जीव हैं, वहाँ से निकल कर तीर्थकर होंगे, और रावण जब तीर्थकर होगा तो उनकी सभा का मुख्य गणधर सीता का जीव होगा । तो चूंकि अवधिज्ञान जब इतना विस्तृत है १६वें स्वर्ग का कि वह ५वें नरक तक की बात जान सकता है, फिर तो ये तीसरे चौथे नरक में ही गए हुए थे । इस प्रकार कल्पों में रहने वाले देवों के अवधिज्ञान वहाँ होता है ।

कल्पोत्तर वैमानिक देवों के अर्थात् ग्रैवेयक, अनुदिश व अनुत्तर विमानवासी देवों के जघन्य व उत्कृष्ट अवधिज्ञान की सीमा—अब कल्पोत्तर जो देव हैं उनके वर्णन में सर्वप्रथम नवग्रैवेयक वाले देवों का वर्णन करते हैं । स्वर्गों के ऊपर ९ पटल हैं, इन पटलों को ग्रैवेयक कहते हैं और उन पटलों में ग्रैवेयकवासी अहमिन्द्र देव होते हैं । यह स्थान लोकरचना में पुरुषाकार की ग्रीवा जैसा स्थान है और ९ पटल हैं, अत: उन्हें नवग्रैवेयक कहते हैं । एक-एक पटल के बीच में इन्द्र का विमान है और सब दिशाओं में व विदिशावों में एक-एक विमान है । उन विमानों में रहने वाले देव ग्रैवेयकवासी कहलाते है । चूंकि यह स्थान पुरुषाकार लोक में ग्रीवा के स्थान पर पड़ता है, इसलिए इसे ग्रैवेयक कहते है । ग्रीवा, कंठ ये एकार्थवाचक शब्द हैं । जो लोग बैकुण्ठ मानते हैं, ठीक बैकुण्ठ की स्थिति और ग्रैवेयक की स्थिति करीब तुल्य है । बैकुण्ठ वाले भी यह मानते हैं कि तपश्चरण करके जीव बैकुण्ठ में पहुंचता है और वहाँ आनंद भोगता है, निर्दोष है, कषायरहित है । फिर कुछ कल्प काल बाद उसको जन्म लेना पड़ता है । तो ग्रैवेयकवासी देवों की भी ऐसी स्थिति है कि साधु मुनि निर्ग्रन्थ होकर तपश्चरण करके ही ग्रैवेयक में उत्पन्न हुआ जाता है । निर्ग्रन्थ साधु के अतिरिक्त वहाँ किसी की उत्पत्ति नहीं हो सकती । और उनकी स्थिति अधिक से अधिक ३१ सागर प्रमाण है, जो लोगों की समझ से बाहर है कि कितने समय तक वे वहाँ रहते हैं ? इसमें अनगिनते वर्ष लग जाते हैं । ग्रैवेयकवासी देव अनेक सम्यग्दृष्टि भी होते हैं और अनेक मिथ्यादृष्टि भी होते हैं । सभी शुक्ल लेश्या वाले है, पवित्र भाव वाले हैं । उनके चित्त में अशान्ति आकुलता नहीं है, कामवासना भी नहीं है, उनके देवियाँ भी नहीं होती, किन्तु अपनी आयु पूर्ण करके उन सबको जन्म लेना पड़ता है । तो इन नवग्रैवेयक देवों की जघन्य अवधिज्ञान तो ५वीं पृथ्वी के नीचे तक है और उत्कृष्ट अवधिज्ञान छठी पृथ्वी के नीचे तक है । ग्रैवेयक के ऊपर ९ अनुदिश की रचना है । इनका पटल एक ही रहता है । उस एक पटल के बीच में इन्द्रक विमान चार दिशाओं में चार विमान व विदिशावों में भी चार विमान हैं, इस तरह कुल ९ विमान होते हैं और इन ९ विमानों की संख्या के आधार पर इन्हें ९ अनुदिश कहा जाता है । तो इन ९ अनुदिशवासी देवों के उत्कृष्ट अवधिज्ञान लोकनाली पर्यन्त अर्थात् नीचे तो ७वें नरक के नीचे तक और ऊपर भी लोकनाली के अन्त तक इनका अवधिज्ञान है । और इस प्रकार अनुदिश के ऊपर रहने वाले ५ अनुत्तर विमानवर्ती देवों का अवधिज्ञान है । अनुदिश के ऊपर एक पटल है, जिसके बीच में सर्वार्थसिद्धि और पूर्व आदिक दिशा में विजय,, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नाम के विमान हैं । उनमें रहने वाले देव बहुत शान्त और सदा तत्त्वचर्चा करने वाले होते हैं । इनका भी अवधिज्ञान लोकनाली पर्यन्त है । इस अनुत्तर स्थान के ऊपर एक पृथ्वी है, जिसका नाम है सिद्धशिला । इस सिद्धशिला पर सिद्धभगवान नहीं रहते है, सिद्धभगवान तो उससे ऊपर रहते हैं, मगर इस पृथ्वी और सिद्धशिला के बीच में कुछ निवासस्थान भी नहीं है । इस कारण इसका नाम सिद्धशिला रख गया । वैमानिक देवों का यह अवधिज्ञान सबसे नीचे कितना है, क्योंकि उत्कृष्टता नीचे की ओर अवधिज्ञान की ज्यादा रहती है । अब ऊपर कितना है? तो सौधर्म आदिक स्वर्गों में रहने वाले जीवों का तथा ग्रैवेयक अनुदिश व अनुत्तर विमानवासी देवों का ऊपर की ओर अवधिज्ञान कितना ? वे अपने विमान के ऊपर तक का ही अवधिज्ञान रखते हैं और तिर्यक् रूप में असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन तक अवधि

में उनका ज्ञान जानता है । इस प्रकार भवप्रत्यय अवधिज्ञान देवों के कहां-कहां तक होता है, इसका वर्णन हुआ।

नारकियों के अवधिज्ञान की सीमा—अब थोड़ासा नरक में रहने वाले जीवों के अवधिज्ञान का वर्णन सुनो । नीचे की ओर इनका अवधिज्ञान कितना है, रत्नप्रभा नामक पहली पृथ्वी में एक योजन तक अवधिज्ञान है अर्थात् ४ कोश प्रमाण तक उनका अवधिज्ञान है, याने इतने नीचे तक की बात वे जानते है । दूसरी पृथ्वी में याने नरक में रहने वाले नारकियों का अवधिज्ञान साढ़े तीन कोश तक का होता है मायने साढ़े तीन कोश तक के क्षेत्र में होने वाली घटनाओं और वस्तुवों का ज्ञान होता है । तीसरे नरक में रहने वालों का अवधिज्ञान तीन कोश तक की घटना जानना है । चौथे नरक में निवास करने वाले नारकियों का अवधिज्ञान ढाई कोश तक की बात जानता है । ५वें नरक में निवास करने वाले नारकियों का अवधिज्ञान दो कोश तक की बात जानता है और छठे नरक में रहने वाले नारकियों का अवधिज्ञान डेढ़ कोश तक की बात को जानता है और ७वें नरक में रहने वाले नारकियों का अवधिज्ञान एक कोश तक की घटना को जानता है । इनके भी नीचे-नीचे अवधिज्ञान ऊपर की अपेक्षा में विशेष रहता है और सभी पृथ्वियों में सभी नारकियों का अवधिज्ञान ऊपर से उतने ही क्षेत्र तक है जितना कि उनका आवास स्थान है और दिशाओं की ओर असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन तक ज्ञान रहता है । इनके अवधिज्ञान तिर्यक् रूप में विशेष पाया जाता है । इस तरह भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है । इस सूत्र का वर्णन समाप्त हुआ । अब यह जिज्ञासा स्वयमेव होगी कि भवप्रत्यय, अवधिज्ञान तो देव और नारकियों के होता है, तो क्षयोपशमहेतुक अवधिज्ञान किन जीवों के होता है, इसका उत्तर अगले सूत्र में किया गया है ।

सूत्र 22

क्षयोपशमनिमित्त: षड्विकल्प: शेषाणाम् ।।२२।।

क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान की निष्पन्नता—क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान शेष जीवों के होता है । यहाँ शेष से मतलब है ऊपर, कहे गए देव नारकियों को छोड़कर बाकी जो मनुष्य तिर्यञ्च बचे हैं उनका याने मनुष्यगति और तिर्यञ्चगति में जिन जीवों को अवधिज्ञान होता है वह क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान होता है । इस क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान के ६ प्रकार हैं, जिनका वर्णन आगे किया जायेगा । अभी क्ष्योपशमनिमित्तक अवधिज्ञान का व्युत्पत्तिपूर्वक अर्थ सुनना है । क्षयोपशम नाम में तीन शब्द पड़े हैं—क्षय उपशम और निमित्त, याने आवरण कर्म के क्षय और उपशम से होने वाले ज्ञान को क्षयोपशमनिमित्तक कहते हैं । सो इसमें शब्द जरूर दो दिए गए हैं—क्षय और उपशम, पर लेना है तीन शब्द—क्षय उदय और उपशम याने अवधिज्ञानावरण के ही स्पर्धकों का उपशम भी हो, उदयाभावरूप क्षय भी हो, उदय भी हो, ऐसी स्थिति में अवधिज्ञान होता है । क्षय से मतलब समस्त रूप से क्षय का नहीं है, क्योंकि चार ज्ञानावरणों का क्षय तब ही होता है जब केवलज्ञानावरण का क्षय होने को होता है । इससे पहले इन चार ज्ञानावरणों का भी क्षय नहीं है, किन्तु यहाँ क्षय का नाम है उदयाभावी क्षय याने उदय हो और एक समय ही पहले वह अन्यरूप परिणमे, किसी भी प्रकार उसकी फल न मिल सकें वह उदयाभावी क्षय है । अथवा उसे इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि उदय के

होने पर क्षय हो याने अवधिज्ञानावरण के देशघाती स्पर्धकों का यदि उदय हो, उसके होते संते सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभावरूप क्षय हो, उसे कहते हैं यहाँ क्षय और उपशम वह कहलाता है कि सर्वघाती स्पर्धकों का जो कि उदय में नहीं आ रहे उनकी सद्‌अवस्थारूप उपशम हो याने वह सत्ता में पड़ा रहे, उदय में न आ सके, ऐसी स्थिति को कहते हैं उपशम । तो ऐसे क्षय और उपशम जिसका निमित्त है, हेतु है उसे कहते हैं क्षयोपशमनिमित्तक । ऐसा अवधिज्ञान शेष के अर्थात् मनुष्य और तिर्यञ्चों के ही होता है । यहाँ शेष के बताया, इससे यह अर्थ लेना कि एक इन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक सभी तिर्यञ्चों के अवधिज्ञान होता है और सभी मनुष्यों के होता है, यह अर्थ यहाँ न लेना, क्योंकि असंज्ञी जीवों में तो अवधिज्ञान की सामर्थ्य ही नहीं है और संज्ञी जीवों में भी सबके अवधिज्ञान नहीं होता, किन्तु जिन जीवों के शान्ति, समता, अनाकुलता कुछ विशेष हो और सम्यग्दर्शन आदिक परिणामों का निमित्त मिलने पर उन शान्त और क्षीणकर्म वाले जीवों के अवधिज्ञान की उपलब्धि होती हैं ।

सभी अवधिज्ञानों की अवधिज्ञानावरण क्षयोपशम हेतुकता होने पर भी इस सूत्र के पृथक् कथन का रहस्य— इस सूत्र में शेषाणां ऐसा जो कहा है उसका अर्थ निवारणात्मक है अर्थात् देव और नारकियों के तो बता ही दिया था । उनको छोड़कर बाकी जीवों में होता है । सो बाकी जीव मनुष्य और तिर्यञ्च गति के जीव हैं । उनमें जो योग्य हैं, जिनके अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम है उन जीवों के अवधिज्ञान होता है । यहाँ एक आशंका और हो सकती है कि अवधिज्ञान तो सभी के अवधिज्ञानावरणों के क्षयोपशम से होता है । देव हो, नारकी हो, तिर्यंच हो, मनुष्य हो, अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम के बिना किसी को भी अवधिज्ञान नहीं हो सकता । फिर क्षयोपशमनिमित्तक है ऐसा कहना व्यर्थ है । इस आशंका का उत्तर यह है कि जब कभी स्वयं सिद्ध बात होती है और उसे भी कहा जाये तो उसका नियम वाला अर्थ बन जाता है । जैसे पानी तो सभी मनुष्य पीते हैं । कोई ऐसा नहीं है जो पानी न पीता हो, फिर भी किसी के विषय में यदि यह कहा जाये कि वह तो पानी लेता है तो इसका अर्थ यह बनेगा कि वह पानी ही लेता है और कुछ नहीं लेता । तो इसी तरह जब सभी अवधिज्ञान क्षयोपशमनिमित्तक होते हैं और फिर भी कहा जाये कि क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान मनुष्य तिर्यञ्चों के होता है तो उसका नियम बन जाता है । याने मनुष्य और तिर्यञ्चों के क्षयोपशम के निमित्तक ही अवधिज्ञान होता है, दूसरा नहीं होता याने भवप्रत्यय नहीं होता । जैसे किसी सज्ञन के बारे में कहें कि यह तो पानी लेता है तो उसका यही अर्थ बनता है कि यह पानी ही लेता हैं, अन्नादिक नहीं ले रहा । तो ऐसे ही यहाँ यह नियम बनेगा कि शेष जीवों के क्षयोपशम का निमित्तक ही अवधिज्ञान होता है, भवप्रत्ययक अवधिज्ञान नहीं होता ।

अष्टविध अवधिज्ञानों का विवरण—यह क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान ६ प्रकार का है—(१) अनुगामी, (२) अननुगामी (३) वर्द्धमान, (४) हीयमान, (५) अवस्थित और (६) अनवस्थित । यदि इनमें दो प्रकार और मिला दिए जाये कि कोई होता है प्रतिपाती और कोई होता है अप्रतिपाती । तो अवधिज्ञान के ८ प्रकार हो जाते हैं । इसका अर्थ क्या है सो सुनो—कोई अवधिज्ञान अनुगामी होता है तो उसका अर्थ है—अनु मायने पीछे, गामी

मायने चलने वाला याने किसी जीव को अवधिज्ञान हुआ, फिर वह जीव उस क्षेत्र से विहार कर जाये और दूसरी जगह पहुंच जाये तो वहाँ भी अवधिज्ञान रहे तो वह कहलाया क्षेत्र अनुगामी अवधिज्ञान । किसी जीव को किसी भव में अवधिज्ञान है, जैसे मनुष्यभव में अवधि ज्ञान है और मरकर देवगति में जाये और उसका अवधिज्ञान बराबर साथ जाकर देव गति में हो तो उसका नाम है भवानुगामी अवधिज्ञान, और किसी जीव को दोनों ही तरह का सामर्थ्य हो कि एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाये तब भी अवधिज्ञान साथ रहे और एक भव से दूसरे भव में जाये तब भी अवधिज्ञान साथ रहे, उसे कहते है उभयानुगामी । इसी प्रकार अननुगामी भी तीन तरह के होते हैं । जैसे किसी पुरुष को अवधिज्ञान हुआ, जिस क्षेत्र में हुआ, उस क्षेत्र से विहार कर अन्य क्षेत्र में पहुंच जाये वहाँ अवधिज्ञान न रहे, मिट जाये, तो उसे कहते हैं क्षेत्रानुगामी अवधिज्ञान । इसी प्रकार एक भव से दूसरे भव में जाये याने मरण हो जाये तो अगले भव में अवधिज्ञान न जाये, ऐसे अवधिज्ञान को कहते हैं भवाननुगामी अवधिज्ञान । और जिसमें ये दोनों ही सामर्थ्य न हों, एक क्षेत्र से अन्य क्षेत्र में जो वहाँ भी साथ न जाये अवधिज्ञान और एक भव दूसरे भव में वहाँ न जाये तो उसे कहते है उभयाननुगामी अवधिज्ञान । वर्धमान अवधिज्ञान उसका नाम है कि जिसे प्रमाण में अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है उस प्रमाण से चढ़ता हुआ ही रहे उसे कहते हैं वर्द्धमान अवधिज्ञान ।

जैसे जंगल में बासों कीं रगड़ से अग्नि उत्पन्न हो और वह पत्तों में लग जाये तो जैसे वह अग्नि बढ़ती हुई चली जाती है ऐसे ही सम्यग्दर्शन आदिक गुणों के सन्निधान से जिस प्रमाण में अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है, उस प्रमाण से बढ़ता हुआ ही चला जाये, जितना कि उसका उत्कृष्ट विकास है याने असंख्यात लोकपर्यन्त की जान सके उतना तक अवधिज्ञान बढ़ता जाये तो ऐसे बढ़नहार अवधिज्ञान को वर्द्धमान अवधिज्ञान कहते हैं । चौथा अवधिज्ञान है हीयमान अवधिज्ञान । जो गुण आत्मा ने प्राप्त किया है सम्यग्दर्शन आदिक उनकी हानि हो, संक्लेश परिणाम की वृद्धि हो, ऐसा योग बन जाये तो उस समय जिस परिमाण में सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ था उससे घटता हुआ ही रहे, कहां तक घट सकता फिर यह? अंगुल के असंख्यातवें भाग तक । देव और नारकियों के अवधिज्ञान का क्षेत्र कम से कम भी बताया गया था तो एक कोश से कम किसी का न था । मगर मनुष्य तिर्यंचों में कम से कम अवधिज्ञान जगे तो अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र तक ही जाने, इतना मामूली अवधिज्ञान हो और उत्कृष्ट अवधिज्ञान हो मनुष्यों के तो असंख्यात लोक को, सारे लोक को जान ले । इतना ऊँचा अवधिज्ञान देव और नारकियों में नहीं होता और इतना नीचा अवधिज्ञान भी देव और नारकियों में नहीं होता । तो जो क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान है वह यदि हीयमान भेद वाला है तो वह घटता-घटता जघन्य तक हो सकता है । ५वें अवधिज्ञान का नाम है अवस्थित अवधिज्ञान । सम्यग्दर्शन आदिक गुणों के अवस्थित होने से एक रूप परिणामों के विशुद्ध रहने से जिस परिणाम में अवधिज्ञान उत्पन्न होता है उसी परिमाण में ही अवधिज्ञान रहे, उससे न बढ़े, न घटे उसे कहते हैं अवस्थित अवधिज्ञान । यह अवस्थित अवधिज्ञान कब तक अवस्थित रहता है? ज्यादह से ज्यादह जीवन तक रहता है या केवलज्ञान उत्पन्न होने तक रहता है याने केवलज्ञान उत्पन्न हो तब तो रहता ही नहीं, मगर उससे पहले तक चलता है । छठे अवधिज्ञान का नाम है अनवस्थित अवधिज्ञान । सम्यग्दर्शन आदिक गुणा की वृद्धि और हानि होने के योग से बढ़े और घटे याने जिस

प्रमाण में अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ था उससे बढ़े, कभी घटे, इस तरह की बातें चलें तो उसे कहते हैं अनवस्थित अवधिज्ञान । जैसे कि जब जल में हिलोरे उठती हैं तो कभी बढ़ती, कभी घटती, इस तरह से चलती रहती हैं इसी प्रकार यह अनवस्थित अवधिज्ञान होता है । इस प्रकार क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान के ८ भेद कहे गए हैं । अब दूसरी प्रकार से अवधिज्ञान के भेद कहे जाते हैं ।

त्रिविध अवधिज्ञान का विवरण—अवधिज्ञान तीन प्रकार का होता है—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि । देशावधि शब्द का अर्थ है एकदेश अवधिज्ञान, अल्प अवधिज्ञान । परमावधि का अर्थ है परम अवधि, अदिक विशेष अवधिज्ञान, और सर्वावधिक अर्थ है सर्वांश पूर्ण जितना अवधिज्ञान हो सकता है वह समस्त अवधिज्ञान । इन तीन प्रकार के अवधिज्ञानों से देशावधि तीन प्रकार का होता है—जघन्य, उत्कृष्ट और अजघन्योत्कृष्ट याने मध्यम । जघन्य का अर्थ है—बहुत थोड़ी जगह का जान सकना । थोड़े समय को जान सकना, यह तो है जघन्य और बहुत दूर तक की जान सकना और बहुत अधिक काल तक की जान सकना—यह कहलाता है उत्कृष्ट और इन दोनों के बीच जितने भी और स्थान हैं वे सब कहलाते हैं मध्यम । इसी प्रकार परमावधि भी तीन प्रकार से है—जघन्य, उत्कृष्ट और अजघन्योत्कृष्ट याने न जघन्य, न उत्कृष्ट, किन्तु बीच का । सर्वावधि ज्ञान एक किस्म का है । उसमें भेद नहीं है, क्योंकि वह तो एक संपूर्ण अवधिज्ञान है । तो अब देशावधिज्ञान का जघन्य क्षेत्र काल आदिक क्या है और उत्कृष्ट क्या है, यह समझने से पहले थोड़ा यह मन में अवधारण करना कि परमावधि और सर्वावधि तो संयमी मुनियों के होता है और उन मुनियों के जिनके कि केवलज्ञान होगा और देशावधिज्ञान मुनियों के और श्रावकों के सम्यग्दृष्टि के होता है और यदि कुत्सित अवधिज्ञान है तो मिथ्यादृष्टियों के होता है ।

देशावधिज्ञान की जघन्य व उत्कृष्ट सीमा—देशावधिज्ञान कम से कम कितने क्षेत्र तक की जाने? वह है उत्सेधांगुल का असंख्यातवां भाग याने एक अंगुल की जितनी लम्बाई है उसकी जो एक रेखा सी है उसके अनगिनतवाँ भाग दूर तक की जाने । कुछ समझ में ऐसा आ रहा होगा कि यह तो कुछ भी क्षेत्र नहीं है, यह तो शरीर के बाहर एक रोम बराबर जगह भी नहीं है कि जितना कि एक रोम मोटा हो उतने क्षेत्र की बात जाने वह देशावधि है । इसका क्या रहस्य है? तो भाई रहस्य क्या? यह तो ज्ञान की एक कला है । इतना भी न जान सकते थे जिसके अवधिज्ञानावरण का उदय है, तो क्षयोपशम तो आया । इतना जाना तो सही इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना । यह जीव तो इतना परतंत्र है कि मन और इन्द्रिय के साधन बिना यहाँ जान ही नहीं पाता । यद्यपि जानने वाला आत्मा ही है लेकिन मन और इन्द्रिय के साधन बिना यह जान नहीं पा रहा । तो कम से कम एक परतंत्रता तो मिटी, केवल आत्मीय शक्ति से तो जाना । तो देशावधि का जघन्य क्षेत्र है—उत्सेधांगुल का असंख्यातवाँ भाग और देशावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र कितना है? अधिक से अधिक जाने तो कहाँ तक जाने? तो वह है सारा लोक । जितना ३४३ घनराजू प्रमाण लोक है उस सबको जान जाता है और मध्यम इन दोनों के बीच संख्याते विकल्प हैं । संख्याते प्रकार हैं वह है अजघन्योत्कृष्ट । जब अवधिज्ञान बाहर की चीज को जानता है तो उसी बाहरी क्षेत्र में कम से कम क्षेत्र समझना और अधिक से अधिक क्षेत्र समझना

तो वह है कम से कम अंगुल का असंख्यातवां भाग और अधिक से अधिक सर्व लोक ।

परमावधि व सर्वावधिज्ञान की सीमा—परमावधि का जघन्य क्षेत्र करा है? उसका क्षेत्र है देशावधि के क्षेत्र से एक प्रदेश अधिक याने देशावधिज्ञान उत्कृष्ट से जितने दूर तक के क्षेत्र की बात जानता है उससे एक प्रदेश अधिक परमावधि का जघन क्षेत्र है याने जितना लोक है उससे एक प्रदेश अधिक । यहाँ शंका की जा सकती कि लोक तो जितना है सो है ही और अवधिज्ञान का विषय है रूपी पदार्थ । उस सबको जान लिया उत्कृष्टादेशावधिज्ञान ने । अब उसके बाहर तो कुछ है ही नहीं, पर परमावधि का जघन्य क्षेत्र इस तरह कैसे कहा जा रहा है? भाई उत्तर यह है कि नहीं हैं बाहर रूपी पदार्थ सो न जानेगा, लेकिन क्षयोपशम इतना है कि इसके आगे की जान सकता है । परमावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र है असंख्यात लोक प्रमाण । अब लोक तो एक है लेकिन शक्ति इतनी है कि ऐसे असंख्यात लोक हों तो वे भी जानने में आयेंगे परमावधिज्ञानी के ज्ञान में, और मध्यम है इसके बीच का क्षेत्र । अब सर्वावधि ज्ञान का जघन्य और उत्कृष्ट क्षेत्र सुनो । उत्कृष्ट परमावधिक्षेत्र से बाहर असंख्यात क्षेत्र तक जानता है सर्वावधिज्ञान । यह सर्वावधि का क्षेत्र है, न वहाँ जघन्य है, न उत्कृष्ट है । यहाँ संक्षेप से यह जानना कि देशावधि का जघन्य क्षेत्र है अंगुल का असंख्यातवाँ हिस्सा और उत्कृष्ट है सारा लोक और सारे लोक से एक प्रादेश अधिक यह है परमावधि का जघन्यक्षेत्र और उत्कृष्ट है । असंख्यात लोक और इससे बाहर असंख्यात क्षेत्र, और भी मिलकर सर्वावधि का क्षेत्र होता है ।

देशावधि, परमावधि व सर्वावधिज्ञान में अष्टविध विशेषताओं से विशेषता का दिग्दर्शन—अब देशावधि, परमावधि और सर्वावधि ज्ञान में परस्पर भिन्नता समझने के लिए आठ प्रकार के भेदों का सहारा लें । जैसे कि ऊपर कहा गया था कि अवधिज्ञान ६ प्रकार का होता है—(१) अनुगामी, (२) अननुगामी, (३) वर्द्धमान, (४) हीयमान (५) अवस्थित और (६) अनवस्थित । इन ६ के अतिरिक्त दो भेद और लगायें—प्रतिपाती और अप्रतिपाती । इसका अर्थ है कि जो अवधिज्ञान छूट जायेगा वह तो है प्रतिपाती और जो अवधिज्ञान छूट न सके, किन्तु उसके बाद केवलज्ञान हो ऐसे अवधिज्ञान को कहते हैं अप्रतिपाती । तो यों अवधिज्ञान की भिन्नता समझने के लिए ८ प्रकार के भेद जानना चाहिए । इनमें से देशावधिज्ञान में तो ये ८ ही भेद होते हैं । देशावधिज्ञान अनुगामी होता है याने अन्य क्षेत्र में जाये, अन्य भाव में जाये और अननुगामी भी होता याने न भी जाये । वर्द्धमान होता । जिस तादाद में उत्पन्न हुआ उससे बढ़ता ही रहे और हीयमान भी होता याने यह घटता रहे । अवस्थित होता । ज्यों का त्यों रहे और अनवस्थित होता याने कभी घटे, कभी बढ़े । देशावधिज्ञान की बात कही जा रहा है । वह प्रतिपाती भी हो सकता, अप्रतिपाती भी हो सकता । याने छूट जाये और न भी छूटे, याने केवलज्ञान होकर ही छूटे । ऐसे आठों ही प्रकार देशावधिज्ञान में सम्भव है । परमावधि ज्ञान में हीयमान और प्रतिपाती ये दो भेद नहीं होते, बाकी ६ भेद होते हैं ।

देखो परमावधि ज्ञान नियम से केवलज्ञान होने तक रहता है, केवलज्ञान हुए बाद ही निवृत्त होता है याने ज्ञान की पर्याय अवविज्ञानरूप चल रही है । चल रही है उसके अनन्तर ही केवलज्ञान की पर्याय होती है तब अवधिज्ञान रहता ही नहीं । उस अवधिज्ञान का व्यय और केवलज्ञान का उत्पाद वे एक ही समय में हैं । तो जो अवधिज्ञान केवलज्ञान उत्पन्न करके ही निवृत्त होगा उसे प्रतिपाती कैसे कहा जायेगा? यह एक स्थिति उत्कृष्ट

है कि केवलज्ञान होने पर छूटा तो छूट ही गया । केवलज्ञान में तो और विषय बढ़ गया । अब यह ज्ञान तीन लोक अलोक की बात जानने लगा । इसी प्रकार परमावधि ज्ञान में हीयमान प्रकार नहीं होता याने परमावधि घटता जाये यह स्थिति नहीं आती । जिस अवधिज्ञान के बाद केवलज्ञान होगा तो उस ज्ञान में तो अतिशय ही बढ़ता जायेगा । घटने का कोई सवाल नहीं । सर्वावधि ज्ञान में चार ही भेद होते हैं—(१) अवस्थित, (२) अनुगामी (३) अननुगामी (४) अप्रतिपाती । इसको कारण यह है कि सर्वावधिज्ञान एक ही प्रकार का होता है । उसका जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट क्षेत्र नहीं होता । जो है सो ही होता है । तो जब जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट नहीं है तो बढ़ने घटने की बात कैसे हो सकती ? बढ़ने घटने का तो अर्थ यह ही है कि कभी आगे के क्षेत्र को जानने लगे, कभी कम जानने लगे और वह तो एक ही प्रकार का है तो वर्द्धमान हीयमान भेद नहीं, अनुगामी, अननुगामी होते हैं, इसका भावार्थ क्या है? अनुगामी का तो अर्थ यह है कि जहाँ-जहाँ जाये वहाँ-वहाँ सर्वावधि भी रहे । मिटता नहीं, क्योंकि अनुगामी में तीनों प्रकार होते है । इनका मरण तो होता नहीं, निर्वाण होगा तो अगले भव में सर्वावधिज्ञान जाता कि नहीं । इसका प्रश्न ही नहीं उठता, पर एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में वें मुनिराज जाये तो अवधिज्ञान भी साथ ही जाता, मिटता नहीं है । यह कहलाया अनुगामी अवधिज्ञान और अनुगामीपना कैसे होता? मायने साथ न जाये—यह तो हल्की बात जंचेगी? उत्तर सुनो—केवलज्ञान जब हो गया तब आगे नहीं जाता, इस दृष्टि से सर्वावधि को अननुगामी जानना है । ऐसी ही दृष्टि परमावधि में लेना । अप्रतिपाती तो है ही याने गिरेगा नहीं, बढ़ता ही चला जायेगा । केवलज्ञान होगा तो अवधिज्ञान स्वयं ने रहेगा और साथ ही ऐसा एक सर्वावधिज्ञान अवस्थित ही होता है ।

देशावधिज्ञान का जघन्य क्षेत्रसीमा के साथ कालसीमा का परिचय—अच्छा ऐसे सामान्य वर्णन के बाद अब इसकी विशेषताओं को काल के साथ सुनो । तीन प्रकार के अवधिज्ञान कहे गए—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि । देशावधि का जघन्य क्षेत्र है उत्सेधांगुल का असंख्यातवां भाग । तो जो इतना ही मात्र जान पा रहा है अवधिज्ञान के द्वारा अंगुल का असंख्यातवाँ भाग तो उसका समय कितना याने कितने समय पहले बाद की बात जानेगा? तो वह समय है आवली का असंख्यातवाँ भाग । आवली बहुत छोटा समय कहलाता । आंख की पलक जितनी देर में गिरती है उतनी देर में अनगिनते आवली समय गुजर जाते हैं । उसमें से एक आवली का असंख्यातवाँ भाग जघन्य काल है । यह बात सुनकर भी क्षेत्र की तरह एक अचरज वाली बात होगी कि यह भी कोई काल है? याने जघन्य देशावधि ज्ञानी आवली के असंख्यात भाग आगे पीछे की बात जानता है । अरे इतने समय में तो एक डेढ़ शब्द भी नहीं बोला जा सकता । इतने छोटे काल की बात जानता है । इसका आश्चर्य न करना चाहिए ।

कारण यह है कि वह अब इन्द्रिय और मन का आलम्बन तजकर एक जानने की स्थिति में तो आया । चाहे कितना ही जाना हो, केवल आत्मीय शक्ति से तो जाना, प्रत्यक्ष तो जाना, स्पष्ट तो जाना । अच्छा तो जो देशावधिज्ञान सर्व जघन्यरूप से उत्सेधांगुल के असंख्यातवें भाग जगह की जाने और आवली के असंख्यातवें भाग जगह की जाने और आवली के असंख्यातवें भाग काल की जाने तो वह द्रव्य जितना जानेगा । तो द्रव्य भी उस सर्व जघन्य देशावधि का जो विषय क्षेत्र है अंगुल का असंख्यातवां भाग उतने ही प्रदेश प्रमाण द्रव्य को

जानेगा । इतना स्थूल पदार्थ जानेगा जिसमें कि अनन्त प्रदेश होते हैं और भाव । कितना जानेगा? तो भाव के मायने हैं जिस पदार्थ को जाना जा रहा है उस पदार्थ में पाये जाने वाले अनन्त, वर्णादिक जो विकल्प हैं याने उन पर्यायों की जो हीनाधिकता आदिक अविभागप्रतिच्छेद वाली पर्याय है वह भाव कहलाती है, उसे जाने, यह तो हुआ सर्वजघन्य देशावधिज्ञान का वर्णन ।

देशावधिज्ञान की अजघन्योत्कृष्ट व उत्कृष्ट क्षेत्रसीमा के साथ कालसीमा का परिचय—अब इसके बाद बड़े ही बड़े ज्ञान होंगे । तो एक जीव जो जघन्य देशावधिज्ञान में है वह इससे आगे और बढ़े तो एक प्रदेश आगे न बढ़ेगा, वह विशेष आगे-बढ़ेगा । हाँ नाना जीवों की अपेक्षा ये सब बातें मिल जायेंगी कि कितने जीव सर्व जघन्य अवधिज्ञान के क्षेत्र से एक प्रदेश अधिक की बात जानेगा, पर वही एक जीव अवविज्ञान में बढ़ेगा तो पहली बार में एक ही साथ अनेक डिग्रियों की बुद्धि कर पायगा, एक की नहीं कर सकता । जैसे मेंढक उछलता है तो उससे कहे कोई कि तू बस एक सूत आगे ही उछल तो वह उछल तो न पायेगा । तो जैसे मेढक उछलता है तो उन उछालों में जघन्य उछाल कितनी है ? कम से कम कितनी दूर उछलेगा ? उसका उत्तर कोई देगा तो एक सूत का तो न देगा । आधा इंच का भी न देगा । उछाल तो उसकी कम से कम की भी अधिक है । जितना भी देगा कम से कम, सो वह हुई मेढक के उछलने की पहली वृद्धि । इस तरह से बढ़ते-बढ़ते यह अवधिज्ञान सर्व लोक पर्यन्त बढ़ जाता है । अब थोड़ा संक्षेप में इसके एक मोटे-मोटे बढ़ाव की बात सुनो । जो बढ़-बढ़कर एक अंगुल दूर की बात जानने लगा, ऐसा जिसके अवधिज्ञान हो याने आत्मा जितने क्षेत्र में है, देह प्रमाण है ना, तो देह का जितना प्रमाण है उतनी जगह आत्मा है तो उस क्षेत्र से बाहर एक अंगुल प्रमाण मानो जान लिया तो, ऐसा जानने वाला जीव काल की अपेक्षा कितने समय पहले और बाद की बात जानेगा? तो उसका काल होगा कुछ कम एक आवली काल । यह भी एक अभी तक हैरानी का उत्तर जैसा है । एक आवली होती ही कितनी है? एक पलक गिरने में असंख्यात आवली होती हैं । फिर भी कितना ही हो, जाना तो कुछ विशेष ही । अब इसके आगे बढ़-बढ़कर जो जीव ७-८-९ अंगुल तक की बात जानने लगा तो उसका समय होगा एक आवली प्रमाण । कोई जीव एक हाथ दूर तक की बात जानने लगा अवधिज्ञान के द्वारा तो उसका काल होगा आवली पृथक्त्व उसे ९ तक के अंदर आवलियां । जो जीव एक गव्यूति प्रमाण क्षेत्र अर्थात् दो कोश तक की बात अवधिज्ञान से जाने तो ऐसा जीव कितने पीछे तक की बात जानेगा? कुछ अधिक उच्छ्वास के काल बराबर । जो अवधिज्ञान एक योजन (चार कोश) तक की बात जान लेगा तो वह कितने समय आगे पीछे जानेगा? तो वह है अन्तर्मुहूर्त । कुछ मिनट पहले और पीछे की बात जान लेगा । जो जीव २५ योजन प्रमाण क्षेत्र तक का जानने का सामर्थ्य रखता है अवधिज्ञान से तो वह कितना आगे पीछे काल की बात जानेगा? तो उसका काल है कुछ कम एक दिन का । मायने एक दिन पहले व बाद की बात अवधिज्ञान से जान ले । देखिये यहाँ बहुत वृद्धि होने के बाद इतना समय आ पाया । यहाँ एक बात और समझने की है कि समय का तो प्रमाण कम बढ़ता है और क्षेत्र का प्रमाण ज्यादा-ज्यादा बढ़ रहा है । जो जीव भरतक्षेत्र तक की बात जान सकता है अवधिज्ञान से, जिसके अवधिज्ञान का क्षेत्र इतना बड़ा हो गया है उसके काल का कितना समय है? कितना आगे पीछे की बात जान ले? तो उसका काल है आधा महीना (१५ दिन) और जो

जीव जम्बूद्वीप तक के क्षेत्र की बात अवधिज्ञान से जानता है उसका काल कितना है? मायने कितना आगे पीछे तक की बात जान सकता है? तो उसका काल है कुछ अधिक एक महीना । और जो जीव मनुष्यलोक तक की बात जान सकता है तो वह कितना आगे पीछे तक की बात जानेगा? तो उसका काल है एक वर्ष और जो रुचकगिरि पर्यन्त जानता है उसका है ७-८ वर्ष । और जो संख्यात द्वीप समुद्र की बात जानता है उसका काल है संख्याते वर्ष और जो असंख्यात द्वीप समुद्र के क्षेत्र की बात अवधिज्ञान से जानता है उसका काल है असंख्यात वर्ष का । इनके आगे पीछे भूत भविष्य की बात जान लेगा । इस तरह यह सामान्यतया याने तिर्यञ्च और मनुष्यों का जघन्य और उत्कृष्ट ज्ञान है ।

सिर्फ तिर्यंचों के अवधिज्ञान की जघन्य और उत्कृष्ट सीमा का परिचय—सिर्फ तिर्यंचों को उत्कृष्ट देशावधिज्ञान कितना याने गाय, भैंस, घोड़ा आदिक जो संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव हैं उनके भी अवधिज्ञान हो जाता और उनमें भी सम्यग्दृष्टि जीव पाये जाते हैं, तो उनके अवधिज्ञान का क्षेत्र कितना है उत्कृष्ट? तो वह है असंख्यात द्वीप समुद्र, और असंख्यात वर्ष काल और तैजसशरीरप्रमाण द्रव्य को जानता है । तो देशावधि की बात में एक यह भी अन्तर जानना कि कम से कम देशावधिज्ञान मनुष्य के होगा, तिर्यच के नहीं । और ऊँचे से ऊँचा देशावधिज्ञान मनुष्य में होगा तिर्यंचों के नहीं । और तिर्यंचों के केवल देशावधिज्ञान ही हो सकता है, परमावधि और सर्वावधि ज्ञान नहीं होते । ये तो मनुष्यों के ही होते हैं । अब मनुष्य का उत्कृष्ट देशावधिज्ञान असंख्याते द्वीप समुद्र तक को जानता है और असंख्याते काल के भूत भावी को जानता है, और द्रव्यादिक इतना छोटा जानते जितना कि कार्माण द्रव्य होता है । इस तरह देशावधि का वर्णन समाप्त हुआ ।

परमावधिज्ञान की जघन्य व उत्कृष्ट सीमा और विशेषता—अब परमावधि का वर्णन करेंगे । जो उत्कृष्ट देशावधिज्ञान का क्षेत्र और काल है, जैसा कि बताया गया है कि असंख्याते द्वीप समुद्र तो क्षेत्र है और असंख्याते वर्ष काल है और द्रव्य है कार्माण द्रव्य बराबर अवधिज्ञान का विषय । तो इस देशावधिज्ञान से कुछ अधिक क्षेत्र काल परमावधि का जघन्यरूप से विषय है और उत्कृष्ट परमावधि का क्षेत्र है असंख्याते लोकप्रमाण अर्थात् असंख्याते लोक है याने कितने असंख्यात? जितनी कि अग्निकायिक जीवों की संख्या है, इतने लोकप्रमाण उत्कृष्ट परमावधि का क्षेत्र है । इसमें अवधिज्ञान के सामर्थ्य की महिमा बतायी गई है । और मध्यम उसके बीच का क्षेत्र काल तो यह तीनों प्रकार का ही परमावधि ज्ञान उत्कृष्ट संयमी जीवों के होता है, साधारण संयमी के भी नहीं । और यह परमावधि वर्द्धमान होता है, बढ़ता हुआ ही रहता है, पर हीयमान नहीं होता । अप्रतिपाती याने केवलज्ञान इसके बाद ही होगा । केवलज्ञान से पहले छूटता नहीं और इस परमावधि को अननुगामी भी कह सकते हैं, क्योंकि परलोक में यह जाता नहीं याने परलोक होता ही नहीं, निर्वाण होता है परमावधि ज्ञानी जीवों का केवलज्ञान होकर, इस तरह वह परमावधिज्ञान हीयमान नहीं और प्रतिपाती नहीं ।

सर्वावधिज्ञान की एकरूपता व विशेषता—अब सर्वावधि ज्ञान का वर्णन करते हैं । सर्वावधि ज्ञान का क्षेत्र, काल, द्रव्य, भाव सभी प्रकार का विषय एक रूप है, क्योंकि यहाँ जघन्य और उत्कृष्ट अवस्था नहीं होती । असंख्यात तो असंख्याते प्रकार की होती है । तो उत्कृष्ट परमावधि क्षेत्र में असंख्याते लोक का गुणा किया जाये तो उतना क्षेत्र सर्वावधि ज्ञान का है । इसमें सामर्थ्य बतायी गई है, लोक तो जितना है सो ही है । यह

अवधिज्ञान न वर्द्धमान है न हीयमान है, न अनवस्थित है, क्योंकि सर्वावधि ज्ञान का विषय एक ही है । अगर सर्वावधि नहीं है तो उसका अर्थ है कि उस अवधिज्ञान की जाति में विकास की घटा-बढ़ी होती है और उसके भेद बन जाते है । सर्वावधि प्रतिपाती नहीं है और जब तक उस संयम अवस्था में वह मुनि विराजमान है तब तक वह अवस्थित है, फिर तो केवलज्ञान हुआ और में अवधिज्ञान ही नहीं रहता, सिर्फ केवलज्ञान ही रहता है और भवान्तर में यह जाता नहीं याने भव होता ही नहीं, इसलिए अननुगामी भी कह सकते और अन्य क्षेत्र में जाये तो वहाँ भी जाये अवधिज्ञान, इस तरह अनुगामी कह सकते ।

अवधिज्ञान की अभ्युदितता—अवधिज्ञान अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम के अनुसार होता है । और अवधिज्ञानावरण क्षयोपशम विशुद्ध परिणाम करके होता है, और उन विशुद्ध परिणामों में महिमावान विशुद्ध परिणाम है सहज ज्ञानस्वभाव की दृष्टि रखना और इस ही अंतस्तत्व की आराधना करना । इसी से ही संयम की वृद्धि है । इस ही अंतस्तत्व की उपासना में ऋद्धि सिद्धि समृद्धि है । आत्मा के कल्याण का मूल आत्मस्वभाव की दृष्टि है । अन्य तो संसार में जितनी भी विषय सामग्री पड़ी हैं, चेतन हों, अचेतन हों, वे केवल मोह के निमित्त बनकर इसकी बरबादी के तो कारण हैं, पर इसके उत्थान के कारण नहीं । आत्मा का उत्थान आत्मस्वभाव की उपासना से ही सम्भव है । क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान इन्द्रिय और मन से नहीं होता, फिर भी आत्मप्रदेश और सूक्ष्म स्कंध हृदयगत, अंतर्गत, वृषभ, स्वस्तिक, नंद्यावर्तं आदिक रूप से एक संस्थानसा होता है और उसके माध्यम से उपयोग बनता है, फिर भी यह पराधीन नहीं है अवधिज्ञान । यह तो प्रत्यक्ष ही है, क्योंकि जहाँ इन्द्रिय और मन की अपेक्षा होती है वहाँ ही पराधीनता है, परोक्षरूपता है, क्योंकि पर इन्द्रिय को ही कहते हैं और इन्द्रिय से परे है मन और मन से परे है बुद्धि, धीर बुद्धि से परे है यह अवधिज्ञान । इस तरह यह क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान उत्कृष्ट रूप से संयमी, साधु मुनिजनों के होता है । जो अंतस्तत्त्व की आराधना करते हैं उनके कर्मपटल दूर होते हैं और यहाँ स्वयं ही ऐसी ऋद्धियाँ उन्हें प्राप्त होती हैं । अब अवधिज्ञान का वर्णन करने के बाद मन:पर्ययज्ञान का नम्बर है । उस ही के विषय में सूत्र कह रहे हैं ।

सूत्र 23

ऋजुविपुलमतीमन:पर्यय: ।।२३।।

द्विविध मन:पर्यय का वर्णन—मन:पर्ययज्ञान ऋजुमति और विपुलमति दो प्रकार का होता है । मन:पर्ययज्ञान का अर्थ है कि दूसरे के मन में तिष्ठते हुए विकल्पगत अर्थ का ज्ञान कर लेना सो मनःपर्ययज्ञान है । बहुत से लोग संकेत से, मनोविज्ञान से मन की बात का परिचय देते हैं, पर वह मनःपर्ययज्ञान नहीं है, क्योंकि उनका ज्ञान स्पष्ट नहीं है, पराधीन है, और मन:पर्ययज्ञान इन्द्रिय मन से परे है और इसमें दूसरे के मनोगत भाव, विकल्पगत अर्थ का स्पष्ट प्रत्यक्ष होता है । यों मनःपर्ययज्ञान प्रत्यक्षज्ञान है । इसके दो भेद हैं—ऋजुमति मनःपर्यय और विपुलमति मन:पर्यय । ऋजुमति में दो शब्द हैं—ऋजु और मति । ऋजु का अर्थ है सरल और मति का अर्थ है ज्ञान याने सरल मन, वचन, कायकृत अर्थ का ज्ञान होना मन:पर्ययज्ञान है । और दूसरा ज्ञान

है विपुलमति मन:पर्यय । विपुल कहते हैं विशाल को, कुटिल को भी, उसमें भी सोचा हो, सोचेगा कुछ उसे भी जान ले । आधा ही सोच पाया उस भी जान ले पूरा, ऐसा विपुल ज्ञान होता है विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी के । जिसका ज्ञान विपुल है उसे विपुलमति कहते हैं । ऋजुमति विपुलमति ऐसे दो शब्द थे, पर एक ही मति शब्द होने से अर्थ का ज्ञान हो जाता है, इसलिए सूत्र में दो मति शब्द नही दिए गए अथवा यहाँ समास है ऋजु और विपुल ऐसा द्वन्द्व समास होकर बना—ऋजुविपुल, जिसका रूप है ऋज्वी च विपुला च, ऋजुविपुले यह हुआ द्वन्द्व समास । अब इसके बाद बहुब्रीहि समास होगा । ऋजुविपुले मती ययोस्तौ ऋजुविपुलमति । याने सरल और कुटिल, कठिन, सभी प्रकार के रूप से ज्ञान जिनको हो सो ऋजुविपुलमति वाले कहलाते हैं याने मनःपर्ययज्ञान दो प्रकार का है—(१) ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान और (२) विपुलमति मनःपर्ययज्ञान ।

मनःपर्ययज्ञान की स्वतंत्रता व स्पष्टरूपता—यहाँ कोई आशंका करता है कि जब मन का सम्बंध हो गया याने दूसरे के मन में जो विकल्प हो, जो पदार्थ चिन्तवन किया हो उसे जानता है मनःपर्ययज्ञान । तो मन का आलम्बन होने से तो यह उत्पन्न हुआ । तो इस तरह उत्पन्न होने वाले मन:पर्यय को मतिज्ञान कहना चाहिए । अलग से मनःपर्यय क्यों कहा? यह आशंका यों ठीक नहीं कि यहाँ मन का आलम्बन नहीं है किन्तु मन में तिष्ठी हुई बात को जाना है । जैसे कोई आकाश में चन्द्रमा को देखता है तो क्या आकाश के द्वारा देखता है? देखा तो आंख से ही, पर आकाश में देखा, इसी तरह से जाना तो अपने ही ज्ञान से, आत्मशक्ति से, पर दूसरे के मन में ठहरे हुए पदार्थ को जाना । इस तरह कहीं आलम्बन न बन जायेगा । और जब दूसरे का मन केवल उस विकल्प का आधारमात्र है, साधनमात्र है तो उसको रहा आया, मगर मनःपर्ययज्ञान वाला मन के आलम्बन से नहीं जानता, वह तो आत्मीय शक्ति से निरपेक्ष ही जान लेता है । इस कारण मनःपर्ययज्ञान मतिज्ञान नहीं कहला सकता, किन्तु स्पष्ट प्रत्यक्षज्ञान है ।

मन:पर्ययज्ञान का अनुमानज्ञान में अन्तर्भाव किये जगाने की अशक्यता—अब यहाँ शङ्काकार एक और आशंका रख रहा है कि जब मनःपर्ययज्ञान में मन का प्रतिबोध है अर्थात् अन्य पुरुष के मन में रहने वाले अर्थ को जानता है तो मनःपर्ययज्ञान अनुमानज्ञान कहलायेगा । अनुमानज्ञान में भी तो यही होता है कि धूम के प्रतिबंध होने से धूम से सम्पृक्त गुण का अनुमान बनता है और ऐसा ही यहाँ हो रहा है कि अन्य पुरुष के मन के प्रतिषेध से उसके मन में लगे हुए, विकल्पित हुए अर्थों को मनःपर्ययज्ञान जानता है । तो यों यह अनुमानज्ञान क्यों न बन जायेगा? इस शङ्का का उत्तर देते हैं कि अनुमानज्ञान में और प्रत्यक्षज्ञान में लक्षण का विरोध है । मनःपर्ययज्ञान में प्रत्यक्ष का लक्षण ही घटित होता है । प्रत्यक्ष का लक्षण बताया गया है कि जो इन्द्रिय और मन से निरपेक्ष हो, जिसमें व्यभिचार न आये, स्पष्ट ग्रहण हो उसे कहते हैं प्रत्यक्ष । तो इस लक्षण के साथ मन:पर्ययज्ञान का अविरोध है, किन्तु अनुमानज्ञान में यह लक्षण घटित नहीं होता । अत: मनःपर्ययज्ञान को अनुमानज्ञान नहीं कह सकते । अथवा ऐसा समझना कि अनुमानज्ञान तो उपदेशपूर्वक होता है और चक्षु आदिक इन्द्रिय के सम्बन्ध से होता है अर्थात् जब पहले सुना कि यह अग्नि है, यह धूम है, यह जानकर समझाते ही हैं जैसे बच्चों को, अथवा बच्चे स्वयं दूसरे के शब्द सुनकर समझ ही जाते हैं कि यह अग्नि है, यह धूम है, तो पहले तो इस तरह अग्नि और धूम का परिचय बना, फिर पीछे धूम देखा । अब चक्षुइन्द्रिय से उपयोग हुआ,

उससे फिर अग्नि में अनुमान बनता है । तो इसमें तो प्रत्यक्ष का लक्षण नहीं घटित होता । और मनःपर्यय ऐसा है नहीं । न वह उपदेश की अपेक्षा रखता है और न चक्षु आदिक इन्द्रिय के सम्बन्ध से होता है, किन्तु इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना केवल आत्मीय शक्ति से ही दूसरे के मनोगत पदार्थों को जानता है । इस कारण मनःपर्ययज्ञान अनुमान ज्ञान में सम्मिलित नहीं हो सकता । वह तो स्पष्ट स्वतंत्र प्रत्यक्षज्ञान है ।

ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान का विवरण—अब ऋजुमति मनःपर्यय के भेदों के विवरण द्वारा परिचय करें । ऋजुमति मन:पर्ययज्ञान तीन प्रकार से होता है, एक तो दूसरे के सरल मन से निष्पन्न अर्थ को जानने वाला, दूसरा—सरल वचन से कृत अर्थ को जानने वाला, तीसरा—सरल काय से कृत अर्थ को जानने वाला । इसका भाव यह है कि किसीने मन से व्यक्त अर्थ का संचिंतन किया, फिर कालान्तर में उस ही का फिर विचार किया और फिर वह विस्मृत होकर उसका चिन्तवन करने में समर्थ न रहा, ऐसे पदार्थ को ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान किसी के द्वारा पूछे जाने पर या न पूछे जाने पर भी जान लेता है कि यह पदार्थ है व इस प्रकार से इसने इन पदार्थों का चिन्तवन किया है । इसी प्रकार कोई पुरुष ने धर्मादिक भाव वाले वचन से खूब भली प्रकार बोला—अब बोलने के बाद कालान्तर में उसे भूल गया । अब वह चिन्तन करना चाहता है—क्या कहा? चिन्तवन कर नहीं सकता । ऐसे उस विकल्प को, पदार्थ को ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान स्पष्ट जान लेता है कि इसने यह बोला था । इसी प्रकार किसी पुरुष ने सरल चेष्टा द्वारा कोई क्रिया की और क्रियाकार कालान्तर में मानो अब उसे सोच रहा है, पर विस्मृत होने के कारण चिन्तन नहीं कर सकता, उसे भी मनःपर्ययज्ञान जान लेता है कि इसने यह किया था । तो चूंकि वह पुरुष मन में चिन्तन करना चाहता, नहीं सोच पाता । उसके मन में क्या विकल्प है, उससे सम्बंधित पदार्थों को यह ऋजुमति मन:पर्ययज्ञान वाला जानता है । मन:पर्यय शब्द में सीधा अर्थ यह आया है कि मन की परिणति को जानता है याने मन को ही जानता है । दूसरे के मन को जान लेना, स्पष्ट प्रत्यक्ष विवाद रहित जान लेना सो मन:पर्ययज्ञान है । यह ऋजुमति मन:पर्ययज्ञान भूतकाल में कब तक के चिन्तन किए हुए को जानता है याने दूसरा पुरुष कितने समय पहले चिंतन कर रहा था, उसे जानता है । तो उसका समय जघन्य से तो है २-३ भव और उत्कर्ष से है ७-८ भव और कहां तक की बात जानता है? उस सूत्र की मर्यादा है जघन्य से तो प्राय: ७-८ कोश अर्थात् ३ कोश से लेकर ९ कोश भीतर तक, इससे बाहर नहीं जान सकता और उत्कर्ष से जानेगा । तो पृथक्त्वयोजन अर्थात् ३ से लेकर ९ योजन के बीच तक । यह ऋजुमनःपर्ययज्ञान संयमी जीवों के होता है, सम्यग्दृष्टियों के होता है, जिन्होंने सहज अंतस्तत्त्व की उपासना की और उससे अनेक कर्मकलंक दूर हुए, पवित्रता बढ़ी । ऐसे पुरुष के ज्ञान किस-किस प्रकार से विकसित होते हैं वह सब कला इस प्रसंग मे समझना है ।

विपुलमति मन:पर्ययज्ञान का विवरण—अब विपुलमति मनःपर्ययज्ञान की बात सुनो । विपुलमति मनःपर्ययज्ञान ६ प्रकार का होता है—सरल मन के विषय को जानना, सरल वचन के विषय को जानना, सरल काय के विषय को जानना, कुटिल मन के विषय को जानना, कुटिल वचन के विषय को जानना, कुटिल काय के विषय को जानना । सरल मन की बात तो ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान में जिस तरह बताया सो है और कुटिल की बात ऐसी है कि किसी मनुष्य का कुटिल मन है, मायाचारी वाला मन है, ऐसे कुटिल वचन और शरीर की बात है ।

उससे चिन्तन किये हुये, बोले हुये, चेष्टा किए हुए पदार्थ का कालान्तर में वह चिन्तन न कर सके अथवा भविष्य में उसका कभी चिन्तन करेगा अथवा चिन्तन नहीं किया, चिन्तन का विचार भी नहीं उठ रहा, फिर भी उसके पूर्व चिन्तित पदार्थ को जान लेना सो यह विपुलमति मनःपर्ययज्ञान है । विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी जीव तो और दूसरों का चिन्ता, जीवन, मरण, सुख दुःख, लाभ अलाभ, सरल मन से, कठिन मन से चिन्तन किए हुए, न चिन्तन किए हुए सभी प्रकार के पदार्थों को जानता हैं । विपुलमति मनःपर्ययज्ञान कितने भूत और कितने भविष्य तक की बात जान सकता है, तो जघन्य से तो ७-८ भव और उत्कृष्ट से असंख्याते भव तक की बात जान सकता है । क्षेत्र की अपेक्षा से कहाँ तक के मन के चिन्तन वाले को जान सकता है? तो जघन्य से तो पृथक्त्व योजन अर्थात् तीन योजन से ९ योजन तक और उत्कर्ष से मानुषोत्तर पर्वत के भीतर । इस सम्बन्ध में दो मंतव्य मिलते है, एक तो ऐसा कि मानुषोत्तर पर्वत के भीतर तक जानेगा, बाहर नहीं, एक ऐसा कि मानुषोत्तर पर्वत तक का क्षेत्र है ४५ लाख योजन । तो कोई जीव अगर मानुषोत्तर पर्वत के पास निकट ही बैठा है, भीतर संयमी मुनि और वह विपुलमति मन:पर्ययज्ञानी है तो उत्कर्ष से जानेगा तो ४५ लाख योजन तक की जान लेगा । अब वह बाहर का भी क्षेत्र बन जायेगा । तो एक मंतव्य से तो नाप वाला क्षेत्र है और एक मंतव्य से अवधि वाला क्षेत्र है कि मानुषोत्तर पर्वत तक जानेगा, उसके बाहर नहीं । उसके भीतर ४५ लाख योजन जान लेगा । अब ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान का विवरण करके यह कहते हैं कि इन दोनों में परस्पर में अन्तर है क्या?

सूत्र 24

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ।।२४।।

ऋजुमति मन:पर्ययज्ञान व विपुलमति मनःपर्ययज्ञान में विशेषता का वर्णन—विशुद्धि और अप्रतिपात से ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान में विशेषता है, परस्पर अन्तर है । विशुद्धि नाम है आत्मा के निर्मल भाव का । विशुद्ध्यावरण कर्म का क्षय होने पर अर्थात् चारित्रमोहनीय प्रकृतियों का यथासम्भव क्षयोपशम होने पर आत्मा में जो प्रसन्नता होती है, निर्मलता जगती है उसको विशुद्धि कहते है, और अप्रतिपात कहते हैं प्रतिपात न होना याने गिरना नहीं, केवलज्ञान ही उत्पन्न होवे, उससे पहले मनःपर्ययज्ञान छूटे नहीं, इसे कहते हैं अप्रतिपात । तो इन दोनों दृष्टियों से ऋजुमति मनःपर्यय और विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान में अन्तर है । कैसा अंतर है कि ऋजुमति मन:पर्ययज्ञानी के जितनी विशुद्धि होती है उससे अधिक विशुद्धि विपुलमति मन:पर्ययज्ञानी के है । उसके ज्ञान विशेष है और ऋजुमति मन:पर्ययज्ञान तो प्रतिपाती भी हो सकता याने केवलज्ञान होने से पहले छूट जाये, न केवलज्ञान हो अथवा उस भव में केवलज्ञान ही न हो और विपुलमति मन:पर्ययज्ञान अप्रतिपाती होता है अर्थात केवलज्ञान ही होगा उससे पहले छूटेगा नहीं, केवलज्ञान होते समय तो केवलज्ञान ही रहता, कोई भी ज्ञान नहीं रहता । मन:पर्ययज्ञान की इस द्विविधा में कारण यह है कि जो जीव कषायों का उपशमन करके ऋद्धि प्राप्त करता है, मन:पर्ययज्ञान प्राप्त करता है । उसके जब चारित्रमोह का उदय आता तो वह संयमरूपी शिखर से गिर जाता है तब मन:पर्ययज्ञान छूट जाता । संयम से गिर गया तो संयम से प्रतिपात हो गया, केवलज्ञान न हो सका । यह स्थिति बन सकती है ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी की । और जो कषायों को

क्षीण करके चढ़ा उसके गिरने का कोई कारण ही नहीं रहता । क्षपकश्रेणी से चढ़ रहा, चारित्रमोहनीय का क्षय करता हुआ चढ़ रहा, क्षीण कषाय गुणस्थान में आ गया । विपुलमति मनःपर्ययज्ञान उसके है तो छूटेगा नहीं । १२वें गुणस्थान के अंत में केवलज्ञान हुआ उस समय मनःपर्ययज्ञान नहीं रहेगा । यह है उसके अप्रतिपात की कथा ।

नाम द्वारा दोनों मनःपर्ययज्ञानों में अन्तर सिद्ध होने पर भी सूत्र द्वारा कथन करने के रहस्य—यहाँ एक आशंका हो सकती कि पूर्व सूत्र में जो शब्द दिया है—ऋजुमति, विपुलमति, उससे ही अन्तर सिद्ध हो जाता कि ऋजुमति से विपुलमति मनःपर्ययज्ञान विशेष होता है; फिर यह सूत्र बनाने की क्या आवश्यकता थी? तो उत्तर इसका यह है कि पूर्व सूत्र से जो अन्तर जाना जाता है वह काफी परिचय नहीं है और । उतने मात्र से संतोष नहीं होता । वह तो एक साधारणसा परिचय है । और इस सूत्र से अनेक तथ्य प्रकट हो रहे । विशेष अन्तर की जानकारी के लिए इस सूत्र की रचना हुई है । अंतर यह है कि विशुद्धि से जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप से ऋजुमति में विशुद्धि है उससे अधिक विशुद्धि है विपुलमति मनःपर्ययज्ञान में । इसके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चार की अपेक्षा ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी से विशेष विशुद्धि है । जैसे सर्वावविज्ञान ने क्या जाना था? कार्माण द्रव्य का अनन्तवाँ भाग । इतना सूक्ष्म विषय था । अब सर्वावधि के द्वारा जाने गए विषय के भी अनन्त भाग किए जायें वह है मनःपर्ययज्ञान का विषय, क्योंकि अनन्त के अनंत भेद होते हैं । हां, उत्कृष्टानंत के अनन्त भेद नहीं है, । अनन्त तो ९ प्रकार के होते हैं तथा उसमें भी अनेक हैं तो यों अनन्त के अनन्त भेद होने से ऋजुमति मन:पर्ययज्ञानी सर्वावधि ज्ञान के द्वारा जाने गए विषय का भी अनन्तवाँ भाग जानता है । अब ऋजुमति ने जितना जाना उससे और दूर का विप्रकृष्ट का और सूक्ष्म अनन्तवां भाग जानता है । तो यों विपुलमति मनःपर्ययज्ञान की विशुद्धि ऋजुमति मन:पर्ययज्ञानी से बहुत अधिक होती है । इसी तरह अप्रतिपाती है विपुलमति मन:पर्यय और ऋजुमति मन:पर्यय प्रतिपाती है, क्योंकि ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान के जो स्वामी मुनिराज हैं उनके कषाय के उदय के अनुसार चारित्र की हीनता हो जाती हैं । इस तरह ऋजुमति मन:पर्ययज्ञान और विपुलमति मन:पर्ययज्ञान में अन्तर समझना चाहिए । अब अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान के मध्य क्या अन्तर है, इस विषय का वर्णन करते हैं ।

सूत्र 25

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमन:पर्यययोः ।।२५।।

अवधिज्ञान व मन:पर्ययज्ञान में परस्पर चतुर्विध अन्तरप्रर्शन के प्रसंग में विशुद्धिकृत अन्तर का कथन—विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी और विषय—इन चार अपेक्षाओं से अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान में अन्तर समझना चाहिए। विशुद्धि नाम है निर्मलता का । क्षेत्र नाम है जहां रहने वाले पदार्थों को यह जान जाता है । स्वामी नाम है इस ज्ञान के प्रभुवों और विषय मायने हैं ज्ञेय पदार्थ । कौन ज्ञान कितना विशुद्ध है, कितनी दूर तक का जानता है और उसके कितने स्वामी हैं और वह किस बात को जानता है, इन चार बातों का प्रकाश इन दोनों ज्ञानों के बीच समझना। यहाँ शङ्काकार कहता है कि समझ गए हम । विशुद्धि अवधिज्ञान में ज्यादा है और मन:पर्ययज्ञान

में कम है, क्योंकि मन:पर्ययज्ञान का विषय तो छोटा है याने अवधिज्ञान का जितना विषय है उसका अनन्तवां भाग है और अवधिज्ञान का विषय बड़ा है, इस कारण विशुद्धि अवधिज्ञान में विशेष हुई अपेक्षाकृत मन:पर्ययज्ञान के । इस आशंका का समाधान करते हैं कि विशुद्धता तो मन:पर्यय में विशेष है याने अवधिज्ञान की अपेक्षा मन:पर्ययज्ञान की विशुद्धि और निर्मलता अधिक है। क्योंकि एक तो यह बात समझनी चाहिए कि जो ज्ञान जितनी बारीक चीज को जान सके, महिमा तो उस ज्ञान की है और जो एक मोटी चीज को जाने उसकी महिमा उससे कम है। तो अवधिज्ञान जितने द्रव्य को जानता है उसके भी अनन्तवें भाग को मन:पर्ययज्ञान जानता है तो इसमें तो विशुद्धि विशेष समझनी चाहिए । आम बात भी है ऐसी, किसी को मोटी चीज दिखती है और किसी को बारीक चीज दिख जाती है तो दृष्टि किसकी विशुद्ध कहोगे? जिसको छोटी चीज दिखती, बारीक चीज दिखती उसकी विशुद्धि विशेष है । कोई बड़े अक्षर की बातों को देख सकता है, कोई बहुत छोटे अक्षरों को पढ़ लेता है तो दृष्टि किसकी निर्मल कही जायेगी? दृष्टि कही जायेगी निर्मल छोटे अक्षर पढ़ लेने वाले की । तो अवधिज्ञान का अनन्तवां भाग मन:पर्ययज्ञान का विषय है द्रव्य, तो इससे तो महिमा ही जानी गई मन:पर्ययज्ञान की । दूसरी बात यह है कि मन:पर्ययज्ञान बहुत पर्यायों को जानता है, बहुत प्रकारों से जानता है बनिस्बत अवधिज्ञान के। जैसे कोई पुरुष पढ़ता तो बहुत शास्त्र है, व्याख्यान करता है, मगर थोड़े-थोड़े रूप से ही वर्णन कर सकता है, समस्त रूप से शास्त्रगत् अर्थ को कह नहीं सकता । और दूसरा पुरुष ऐसा है कि एक शास्त्र को बहुत पूरे तौर से व्याख्यान कर देता है और उसके सब अर्थ को कहने में समर्थ है। तो विशुद्ध ज्ञान किसका कहेंगे? चाहे एक ही शास्त्र का व्याख्यान करता है, मगर सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्व के रहस्य का वर्णन करता है तो कौन कहलायेगा विशुद्ध? अधिक पर्यायों को अधिक अर्थों को, अधिक नय और रहस्यों को जानने वाला कहलायेगा बड़ा, उसी प्रकार अवधिज्ञान के विषय के अनन्त भाग को जो जानने वाला है मन:पर्यय उसे ज्यादा विशुद्ध कहा जायेगा, क्योंकि उस अनन्त भाग को रूपादिक बहुत पर्यायों से उसको जानता है, इस कारण विशुद्धि मन:पर्ययज्ञान में विशेष है, अवधिज्ञान में मन:पर्ययज्ञान से कम है।

अवधिज्ञान व मनःपर्ययज्ञान में क्षेत्र विषय व स्वामी की अपेक्षा से अन्तर का कथन—क्षेत्र की बात यह है कि अवधिज्ञान तो सारे लोक को जानता है, उसका क्षेत्र बड़ा है और मन:पर्ययज्ञान मनुष्य क्षेत्र, प्रमाण जानता है और विषय अवधिज्ञान से भी और बारीक अनन्तवाँ भाग मन:पर्ययज्ञान का विषय है । स्वामी मन:पर्ययज्ञान के कम है, अवधिज्ञान के ज्यादा है, इसका कारण यह है कि जिन मुनिराजों के संयम गुण विशिष्ट होता है उनके ही मन:पर्यय ज्ञान होता है । इस तरह बात समझनी चाहिए कि चारों गतियों के जीवों में से सिर्फ मनुष्यों में ही मन:पर्यायज्ञान हो सकता है । देव नारकी और तिर्यञ्च के मन:पर्ययज्ञान सम्भव ही नहीं और मनुष्यों में भी उत्पन्न होने वाले जीव सभी मन:पर्ययज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते, किन्तु गर्भज मनुष्यों के ही मनःपर्ययज्ञान हो सकता है । सम्मूर्छनज मनुष्यों में मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता । गर्भज में भी जो कर्मभूमि के जीव हैं उनमें मन:पर्ययज्ञान उत्पन्न हो सकता हैं, भोगभूमि के जीवों में नहीं । कर्मभूमिजों में भी जो पर्याप्तक हैं? उनमें ही उत्पन्न हो सकते है किन्तु जो अपर्याप्तक हैं याने निवृत्यपर्याप्तक हैं उनमें उत्पन्न नहीं होता । पर्याप्तकों में भी सबमें मनःपर्ययज्ञान नहीं होता, किन्तु सम्यग्दृष्टि हों उनमें ही उत्पन्न होता है । मिथ्यादृष्टि मनुष्यों के

मन:पर्ययज्ञान सम्भव नहीं, सम्यग्दृष्टियों में भी सभी सम्यग्दृष्टियों के नहीं होता, किन्तु संयमी सम्यग्दृष्टि में होता है याने चतुर्थ और पंचम गुणस्थान में भी मन:पर्ययज्ञान नहीं होता, संयमी जीवों में भी छठे से १२वें गुणस्थान तक के जीवों में होता, सो भी उन मुनिराजों के होता जिनका चारित्र बढ़ता हुआ है, हीयमान चारित्र वालों में मन:पर्ययज्ञान नहीं होता और उनमें भी सब मुनियों में नहीं होता, किन्तु ७ प्रकार की ऋद्धियों में से कोई भी ऋद्धि प्राप्त हुई हो, ऐसे मुनियों के ही सम्भव हो सकता है । सो ऋद्धि प्राप्त मुनिराजों में भी सबमें नहीं होता, किसी बिरले में होता है । इस तरह यह समझना कि जिनके विशिष्ट संयम पाया जाता हो उनके ही मन:पर्ययज्ञान होता है । अंब समझिये कि मन:पर्ययज्ञान के स्वामी कितने से हैं संसार में और अवधिज्ञानी चारों गतियों के जीवों में उत्पन्न हो सकते, जो संज्ञी जीव हैं । तो इस तरह स्वामी के भेद से भी अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान में अन्तर पाया जाता है ।

वर्णन में क्रम प्राप्त केवलज्ञान का कथन न करके ज्ञान के विषयों का वर्णन करने का सयुक्तिक संकल्प — अब इस समय केवलज्ञान का लक्षण कहना चाहिए, क्योंकि सब ज्ञानों के विषय में चर्चा चल चुकी है । तो नम्बर यद्यपि केवलज्ञान के वर्णन का आ रहा है तो भी चूंकि उसका वर्णन अंतिम अध्याय से शुरू होगा सब विधियों के बाद, संवर निर्जरा का विवरण करने, के बाद जब मोक्षतत्त्व का वर्णन चलेगा, वहाँ केवलज्ञान का वर्णन चलेगा, इसलिए अन्त में होता है । इस बात को लेकर आचार्य यहाँ केवलज्ञान के लक्षण को न कहकर इस समय ज्ञान के विषयों की बात बतायेंगे । तो सब ज्ञानों में प्रथम ज्ञान है मतिज्ञान और श्रुतज्ञान । उसके सम्बंध में कहते हैं ।

सूत्र 26

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ।।२६।।

मतिज्ञान व श्रुतज्ञान के विषय का निबन्धन—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के विषय में नियम यह है कि वह कुछ पर्यायों सहित सर्वद्रव्यों को जानता है याने कुछ पर्यायसहित समस्त द्रव्यों के विषय में मति श्रुतज्ञान का नियन्त्रण है यह सब मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के विषय का निबंध कहा जा रहा है । यह कैसे जाना? विषय शब्द जो इस सूत्र में पड़ा ही नहीं है, तो उसकी पूर्व सूत्र से अनुवृत्ति आती है । सो यद्यपि पूर्व सूत्र में विषयेभ्य: यों शब्द पंचमी विभक्ति वाला है, फिर भी प्रकरणवश से उसका ग्रहण है और प्रकरण के अनुसार उसका षष्ठी में प्रयोग है । ऐसा देखा भी जाता, बोला भी जाता ।

जैसे कोई कहे कि देवदत्त का घर ऊँचा है, उसको बुला लावो । तो कोई कहेगा कि पहले वाक्य में तो देवदत्त का कहा—अब यहाँ उसको क्यों कहते? तो प्रकरणवश विभक्ति बदल जाती है । तो ऐसे ही यहाँ विषय में षष्ठी विभक्ति लगाई गई है । तब सूत्र का अर्थ हुआ कि मतिश्रुतज्ञान का कुछ पर्यायों सहित सर्व द्रव्यों में विषय का नियम है । मतिश्रुतज्ञान सभी द्रव्यों के बारे में जान लेता है । यह बात कहने के लिए द्रव्येषु में बहुवचन का प्रयोग किया गया है । ६ प्रकार के द्रव्य होते हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल

। उन सबका परिचय मतिज्ञान और श्रुतज्ञान कर लेते हैं, लेकिन समस्त पर्यायों का ग्रहण नहीं कर सकते । कारण यह है कि यह ज्ञान इन्द्रिय और मन के निर्मित से उत्पन्न होता है । सो जिस साधन की जितनी योग्यता है उसके अनुसार ही परिचय हो पाता है । जैसे चक्षुइन्द्रिय से कोई पदार्थ देखा तो केवल रूप पर्याय को ही तो जाना जा सका । रस आदिक तो परिचय में न आये । तो सर्वपर्यायों का ग्रहण तो न हो सका । इसी तरह श्रुतज्ञान से भी शब्द द्वारा होता है परिचय । तो शब्द तो संख्यात ही हैं और द्रव्यपर्याय असंख्यात हैं, अनन्त हैं याने मोटे स्कंध को दृष्टि से तो असंख्याते हैं और अणु-अणु की दृष्टि से अनन्त हैं । तो श्रुतज्ञान के द्वारा भी सर्व पर्याय ज्ञान में आ ही नहीं सकतीं । और मोटे रूप से यह बात है कि भगवान के केवलज्ञान में जितना झलका है, दिव्यध्वनि में उतना प्रकट नहीं होता, दिव्यध्वनि में जितना प्रकट होता है गणधर उतना नहीं गूँथ पाते, जितना गणधर गूँथ लेते हैं उतना लेखन में नहीं आ पाता है । इस तरह श्रुतज्ञान के द्वारा भी सब कुछ नहीं जाना जा सकता । यों मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का कुछ पर्यायों सहित सर्व द्रव्यों में विषय का नियम है ।

मतिज्ञान व श्रुतज्ञान में अमूर्त द्रव्य को भी जान सकने की योग्यता—अब शंकाकार कहता है कि धर्मास्तिकाय आदिक तो बिल्कुल अतीन्द्रिय विषय है, अमूर्त है, इन्द्रिय द्वारा गम्य है ही नहीं, तो उनमें तो मतिज्ञान का प्रवेश नहीं हो सकता और, जब अतीन्द्रिय को मतिज्ञान ज्ञान नहीं सकता तो फिर यह कहना कैसे ठीक है? मतिज्ञान सर्व द्रव्यों का विषय करता है ।

इस शंका का उत्तर यह है कि धर्म अधर्म आदिक अमूर्त पदार्थो का ज्ञान इन्द्रिय द्वारा तो नहीं होता, किन्तु मन द्वारा तो हो जाता है । मन का नाम नोइन्द्रिय है अर्थात् अन्तरंग की इन्द्रिय, अन्तःकरण, ईषत्इन्द्रिय । सो नोइन्द्रियावरण का क्षयोपशम की अपेक्षा रखकर होने वाला जो मानसिक ज्ञान है उसका तो व्यापार है कि अमूर्त पदार्थों को जान ले और एक इस तरह भी समझ लेना चाहिए कि यदि उसमें न लगे मन अर्थात् मन धर्मास्तिकाय आदिक अमूर्त पदार्थों को न जानता होता तो जैसे अवधिज्ञान का विषय बताया है कि रूपी पदार्थों को ही अवधिज्ञान जानता है तो उसके साथ ही मन को भी जोड़ देते कि मन भी रूपी पदार्थों को ही जानता है, पर चूंकि मन अमूर्त पदार्थों के विषय को भी समझता है, इस कारण इस सूत्र में बिल्कुल उपयुक्त कहा है कि मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के विषय का नियम है कि वह समस्त द्रव्यों को जान ले । हां, पर्याय सब नहीं जानी जा सकतीं । अब अवधिज्ञान के विषय का नियम बतलाते हैं ।

सूत्र 27

रूपिष्ववधेः ।।२७।।

अवधिज्ञान के विषय का निबन्धन—अवधिज्ञान का रूपी पदार्थों में विषय का नियम है । रूपी का अर्थ है मूर्तिक, पौद्गलिक । यद्यपि रूप शब्द के अर्थ अनेक होते हैं । जैसे रूप का अर्थ वर्ण है—यह तो प्रसिद्ध ही है, जो चक्षुइन्द्रिय से जाना जाता है, पर रूप का अर्थ कहीं स्वभाव भी होता है । जैसे यह अनन्तरूप है मायने अनन्त स्वभाव वाला है । कहीं रूप का अर्थ स्वरूप होता है । फिर भी यहाँ जो प्रसंग है, प्रकरण है उसके

अनुसार अर्थ है रूपी मायने वर्ण वाला । रूपी होता है पुद्‌गल । यदि रूपी का अर्थ स्वभाव किया जाये तो क्या हर्ज है? ऐसी जिज्ञासा करें तो उसका उत्तर यह है कि यदि रूप का अर्थ स्वभाव कर दिया जाये तो स्वभाव तो सभी पदार्थों में होता है, फिर अवधिज्ञान का विषय अलग से क्या कहा गया? इसलिए रूपी का अर्थ यहाँ स्वभाव नहीं, किन्तु रूपी का अथं पुद्‌गल है । यहाँ एक बात और समझनी चाहिए कि रूपी का अर्थ है रूपवान । और जहाँ ऐसा मातुप् प्रत्यय लगा हुआ है उसका अर्थ निकलता है बहुत वाला, याने बहुत रूप वाला, बहुत धन वाला धनवान, बहुत ज्ञान वाला ज्ञानवान, ऐसे ही बहुत रूप वाला सो रूपी अथवा रूपवान, क्या ऐसा अर्थ है?

तो उत्तर यह है कि इस तरह का अर्थ नहीं है, फिर क्या अर्थ होगा? यहाँ नित्य अर्थ है याने पुद्‌गल नित्य होता है, वह नित्य ही रूप से सत् होता है । जैसे कहा गया कि क्षीरी वृक्ष याने दूधिया वृक्ष, तो अर्थ हुआ कि जो वृक्ष नित्य ही दूध वाला है, इसी तरह नित्य ही जो रूप वाला है वह ही तो पुद्‌गल है, ऐसे पुद्‌गल अवधिज्ञान के विषय होते हैं, सो रूपमुखेन होते हैं ऐसा अर्थ न लेना । रस आदिक रूप से नहीं जाना जाता पुद्‌गल अवधिज्ञान के द्वारा यह अर्थ न लेना । कोई यों सोच ले कि रूपी कहा है तो केवल रूप का ही ज्ञान होता होगा । रस आदिक तो कहे ही नहीं, सो यह अर्थ न लेना क्योंकि रूपी शब्द उपलक्षण है । तो रसादिक का उपलक्षणरूप से ग्रहण है, इस कारण से रूप के अविनाभावी जो रस आदिक है उनका भी ग्रहण करना चाहिए । और इस तरह अर्थ हुआ कि रूपी पदार्थों का ज्ञान अवधिज्ञान करता है, सो रूपी पुद्‌गल के रस का गंध का, स्पर्श का, वर्ण को अवधिज्ञान परिचय करता है ।

रूपी पदार्थों में भी असर्वपर्यायों में अवधिज्ञान के विषय का निबन्धन—अब यहाँ कोई यह जिज्ञासा करता है कि अगर उपलक्षण लिया गया कि रूपी मायने रूप, रस आदिक तो यों ही उपलक्षण से आगे बढ़-बढ़कर ऐसा अर्थ कर लीजिए कि सभी अनन्त पर्यायों में अवधिज्ञान का विषय नियम चलता है । चलो रूपी पदार्थ के ही बारे में, किन्तु उसकी समस्त पर्यायों को अवधिज्ञान जानता है, क्या ऐसा अर्थ लगा लिया जाये? उत्तर यह है कि यह अर्थ भी सही नहीं है । अवधिज्ञान की म्याद हुआ करती है । कितना जाने, कितने भविष्य को जाने, कितनी पर्याय को जाने वह अवधि है और इस बात का निश्चय इस तरह भी कर लीजिए कि पूर्व सूत्र में जो असर्वपर्यायीषु कहा गया है उसकी अनुवृत्ति यहाँ आ जायेगी याने अवधेय असर्वपर्यायेषु रूपिषु, याने इस पर्यायसहित रूपी पदार्थों में अवधिज्ञान के विषय का नियम है और अनवृत्ति हुआ ही करती है । जैसे कोई कहे कि इसके लिए गाय दे दो और उसके लिए कम्बल, तो उसके लिए कम्बल इतने का क्या अर्थ हुआ? उसके लिए कम्बल दे दो । तो पहले वाक्य में जो 'दे दो' शब्द था उसकी अनवृत्ति हो जाती है ।

जैसे कहते हैं कि आप भोजन कीजिए और आप भी । तो कीजिए कोई अनुवृत्ति दूसरे वाक्य में भी लगती है, ऐसे ही पूर्व सूत्र में कहे गए असर्वपर्यायेषु इस शब्द की अनुवृत्ति इस सूत्र में आयेगी । और, इसमें यह अर्थ मिट गया कि अवधिज्ञान समस्त रूपी पदार्थों को नहीं जानता, सर्व पर्यायों को नहीं जानता, किन्तु कुछ पर्यायों सहित पुद्‌गल को जानता है । यहाँ यह भी एक विशेष बात समझनी कि रूपी का विषय करता है अवधिज्ञान, सो रूप का जहाँ किसी प्रकार कुछ भी सम्बंध हो उसे भी जानता है और इस विधि से औदयिक,

औपशमिक, क्षयोपशमिक—इन तीन प्रकार की जिन पर्यायों में भी अवधिज्ञान की गति बन जाती है, पर क्षायिक भाव में नहीं और पारिणामिक भाव में भी नहीं, क्योंकि रूपी द्रव्य के सम्बंध से ये क्षायक और पारिणामिक भाव नहीं होते, अत: ये अवधिज्ञान के विषय नहीं हैं और इस प्रकार धर्मास्तिकाय अमूर्त पदार्थ भी अवधिज्ञान के विषय नहीं हैं, क्योंकि ये न रूपी हैं, न रूपी का इनमें सम्बन्ध है । इस तरह अवधिज्ञान के विषय का निबन्धन कहा गया । अब मन:पर्ययज्ञान का विषय निबंध बतलाते हैं ।

सूत्र 28

तदनन्तभागे मन:पर्ययस्य ।।२८।।

मनःपर्ययज्ञान के विषय का प्रतिपादन—मनःपर्ययज्ञान का विषय अवधिज्ञान के अनन्तवें भाग है, अवधिज्ञान में सर्वोत्कृष्ट ज्ञान सर्वावधिज्ञान है और सर्वावधिज्ञान का जो विषय है वह भी रूपी द्रव्य याने कार्माण द्रव्य का अनन्तवाँ भाग, उसका भी अनन्तवां भाग करके एक भाग में मनःपर्ययज्ञान की गति बनती है अर्थात् मन:पर्ययज्ञान सर्वावधिज्ञान के विषय के अनन्तवें भाग को जानता है । इस सम्बंध में मनःपर्ययज्ञान के विवेचन के समय बहुत स्पष्ट विवेचन आया है कि मनःपर्ययज्ञान का कितना सूक्ष्म विषय है । जब कार्माण द्रव्य का अनन्तवाँ भाग अवधिज्ञान का उत्कृष्ट विषय है तो अब उस अनन्तवें भाग का और क्या अनन्तवां भाग है? उससे बहुत सूक्ष्म पर्यायों का समाधान मिलता है । तो ऐसे बहुत सूक्ष्म द्रव्यों को और वे भी दूसरे के द्वारा चिन्तित किए गए अर्थ को यह मनःपर्ययज्ञान जानता है । अवधिज्ञान तो एकदम सीधे ही द्रव्य को जानता है । है द्रव्य, जान लिया, पर मनःपर्ययज्ञान इस ढंग से जानता है कि किसी ने कुछ चिन्तन किया तो उस चिन्तन में आये हुए विकल्प को, अर्थ को जानता तो यह अवधिज्ञान से भी बहुत अन्त का सूक्ष्म विषय है । ऐसा एक ज्ञानविकास जो मन:पर्ययज्ञान केवलज्ञान से पहले दर्जे में है यह उपलब्धि महामुनि को प्राप्त होती है निज सहजज्ञायकस्वरूप अंतस्तत्त्व की उपासना से । यह जीव संसार में रुला रहा है तो निज अन्तस्तत्त्व की सुध न रखने से । जिसको अन्तस्तत्त्व की सुध हुई है वह पुरुष वह भव्य जीव कैसे-कैसे ज्ञानविकास को प्राप्त होता है, कैसे ऋद्धियाँ स्वयं सहज होती हैं उन सबका इससे अनुमान हो जाता है । अब मनःपर्ययज्ञान के बाद केवलज्ञान के विषय का नियम कहते हैं ।

सूत्र 29

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ।।२९।।

केवलज्ञान के विषय का निबंधन और द्रव्य शब्द के निष्पत्यर्थ में अनेक रहस्यों का दर्शन— केवलज्ञान का समस्त द्रव्यपर्यायों में विषय का नियम है अर्थात् केवलज्ञान समस्त द्रव्य, समस्त पर्यायों को एक साथ स्पष्ट जानता है । द्रव्य के । अर्थ क्या है? तो द्रव्य शब्द की जो व्युत्पत्ति है वह यह है कि—आत्मन: पर्यायान् द्रवति गच्छति इति द्रव्यं, अर्थात् अपनी पर्यायों को जो प्राप्त करे उसे द्रव्य कहते हैं । इस अर्थ में दो बातें ध्वनित होती हैं—एक तो यह कि द्रव्य अपने में अपनी ही पर्यायों को उत्पन्न करता है, अन्य दूसरे की पर्यायों को उत्पन्न

नहीं करता । दूसरी बात यह ध्वनित होती है कि पर्यायों को यहां प्राप्त करता है, उसे कहते हैं द्रवति शब्द से याने अपने आप में अपनी पर्याय द्रवण कर अवस्था बनाता है—इस तरह की ध्वनि निकलती है और यही तथ्य है प्रत्येक पदार्थ का । यह तो कर्तृसाधन में व्युत्पत्ति हुई और कर्मसाधन से इस तरह बनेगा कि तैः द्रूयते इति द्रव्यं अर्थात् पदार्थों के द्वारा जो द्रुत हो सो द्रव्य है ।

अब यहाँ शंकाकार कहता है कि द्रव्य का जब यह अर्थ किया कि जो पर्यायों को प्राप्त करे सो द्रव्य है । तो इसमें तो द्रव्य और पर्याय भिन्न-भिन्न सिद्ध हो गई । तो क्या इस प्रकार भिन्न है और यदि भिन्न नहीं है, द्रव्य और पर्याय एक ही है, अभेद है, तो उसमें कर्ता कर्म का व्यपदेश नहीं बन सकता, क्योंकि अत्यन्त, एक है । जो एक ही निर्विशेष हो उसमें कर्ता कर्मपना नहीं बन सकता । तो द्रव्य का पर्याय से भेद है तब तो सिद्धान्त का ही घात है और यदि अभेद है तो कर्ता कर्म का व्यवहार नहीं बन सकता । इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि द्रव्य और पर्यायों का परस्पर में कथञ्चित अभेद निरखा जायेगा । द्रव्यदृष्टि से तो चूंकि सब वही सत् है तो एक सत् होने के कारण तो अभेद है, पर पर्याय अवस्था का नाम है और वह अपने समय में होता है, अगले समय रहता नहीं, द्रव्य सदा रहता है, इस कारण से भेद है । तो द्रव्य का और पर्यायों का कथंचित् भेद होने पर इसमें कर्ता कर्म का व्यवहार सिद्ध होता है । फिर भी ये द्रव्य, द्रव्य के भेद भिन्न-भिन्न सत् नहीं हैं, किन्तु एक ही सत् है सब ।

पर्यायों का पर्यर्थ—अब द्रव्य की पर्याय क्या होती है? इस विषय में विचार करिये । पर्याय नाम है अवस्था विशेष का । तो जो अवस्था विशेष है । वह जीव के बताई, गई हैं ५३, जिसे कहते ५३ भाव । जीव के सम्बंध में कह रहे हैं तो उन ५३, भावों में कुछ तो धर्म परस्पर विरोधी है और कुछ धर्म अविरोधी है । जैसे जीवत्व पारिणामिक के साथ भव्यत्व या अभव्यत्व हो, और और भी औदयिक हों, औपशमिक हों, क्षायोपशमिक हों, इनका परस्पर विरोध नहीं है, इसलिए यह अविरोधी धर्म है, पर जैसे नारक है, तिर्यञ्च हैं, मनुष्य हैं, देव हैं, ये चार औदयिक भाव में हैं गति, ये तो विरोधी हैं । एक जीव के चारों कैसे संभव हैं? जो मनुष्य है वे तिर्यंच आदिक नहीं, जो तिर्यंच हैं; वे मनुष्यादिक नहीं । इस प्रकार पुरुषवेद स्त्रीवेद, नपुंसकवेद ये एक जीव के एक साथ कहां सम्भव हैं? तो कुछ पर्याय याने धर्मविरोधी है परस्पर तथा कुछ अविरोधी हैं । इसी तरह पुद्‌गलद्रव्य में भी जो रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि गुण है, अनादि पारिणामिक हैं वे शुक्ल आदिक सब पर्यायों के साथ अविरोध हैं, मगर शुक्ल कृष्ण आदिक ये पर्याय परस्पर विरोधी है, एक साथ नहीं रह सकते । तो कहने का तात्पर्य यह है कि कुछ विरोधी धर्म होते, कुछ अविरोधी धर्म होते और कुछ भाव नैमित्तिक होते, कुछ अनैमित्तिक होते । जैसे जीवत्व यह अनैमित्तिक है, पारिणामिक है, क्रोधादिक नैमित्तिक हैं । तो ऐसे सब यथासम्भव जो अवस्थायें हैं इनको पर्याय कहते है ।

अभिन्न तत्त्वों में भी द्वन्द्व समास की सिद्धि—इस सूत्र में यह बतलाया जा रहा कि केवलज्ञान का विषय समस्त द्रव्य और पर्यायों का है । यहाँ शब्द दिया है सर्वद्रव्यपर्यायेषु । जिसका अर्थ है समस्त द्रव्य और समस्त पर्यायों में । तो इसका समास किस तरह है? द्रव्य और पर्याय, ऐसा द्वन्द्व समास है—जिसकी व्युत्पत्ति है द्रव्याणि च पर्यायाः च इति द्रव्यपर्यायाः, द्रव्य और पर्यायें केवलज्ञान के विषयभूत हैं अर्थात् केवलज्ञान द्रव्य और

पर्यायों को जानता है । तो यहाँ शंकाकार कहता है कि इसका द्वन्द्व समास करने से यह भाव निकला कि द्रव्य अलग चीज है, पर्याय अलग चीज है । जैसे कोई कहे कि नीम, पीपल, वट आदिक वे सब न्यारे-न्यारे हैं ना, तभी उनमें द्वन्द बनता है तो द्वंद्व समास करनेपर तो द्रव्य और पर्याय भिन्न-भिन्न हो जायेंगे ।

इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि यह एकांत नियम ठीक नहीं है । द्वन्द्व समास भिन्न पदार्थों में भी होता और एक पदार्थ के ही गुणगुणी आदिक व्यवहार करके कथञ्चित् भेद कल्पना में लाकर उनका भी द्वन्द्व समास होता है । जैसे कहेंगे कि वृक्षत्व और नीम या गोत्व और गोपिण्ड, गौ और गौ जाति । तो अभेद में भी तो व्यवहार होता है द्वन्द्व रूप से बोलने का । यहाँ वैशेषिक यह कह सकते हैं कि सामान्य विशेष भी तो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं । सो इनका निराकरण न्याय ग्रंथों से समझना । निष्कर्ष यह है कि सामान्य विशेष भिन्न-भिन्न चीज नहीं हैं । एक ही पदार्थ में सामान्य और विशेषत्व है ।

द्रव्यपर्यायेषु में शब्दों का तत्पुरुष समास करने पर अनिष्ट आपत्ति —अब यहाँ शंकाकार कहता है कि हम यदि तत्पुरुष समास कर दें तो क्या हानि है? द्रव्याणांपर्याय: इति द्रव्यपर्याया:, याने सर्व द्रव्यों की पर्यायों को केवलज्ञान जानता है । इस शंका के समाधान में कहते हैं कि यदि यहाँ तत्पुरुष समास इष्ट होता अथवा तत्पुरुष समास का भेद अभीष्ट होता तो द्रव्य ही शब्द क्यों दिया जाता? सीधा कह देते कि केवलज्ञान सर्वपर्यायों को जानता है क्योंकि पर्यायें तो द्रव्य की ही होती हैं, अवस्तु के तो नहीं होती । तो द्रव्य शब्द का यह ग्रहण ही यह बात कह रहा है कि तत्पुरुष समास का कोई अर्थ नहीं बनाना किन्तु यह अर्थ करना कि केवलज्ञान का समस्त द्रव्य और समस्त पर्यायों में विषय का नियम है । और ऐसा समास बनाने पर कि केवलज्ञान द्रव्य की पर्यायों को जानता तो इसका यह भी अर्थ हो सकता कि केवलज्ञान पर्यायों को जानता, द्रव्यों को नहीं जानता, क्योंकि तत्पुरुष समास में उत्तर पदार्थ प्रधान होता है । जैसे कोई कहे कि राजा के लड़के को बुलावो तो कोई राजा को तो न बुलायेगा? जो उत्तर में कहा गया है उसी का ही ग्रहण होगा तत्पुरुष समास में । तो ऐसे ही अगर यह तत्पुरुष समास कर दिया जाये कि द्रव्यों की पर्यायों को जानता है तो यहाँ फिर द्रव्य ज्ञात न रहे, यह भाव बन जाता है । शंकाकार रहा है कि जब सब पर्यायें जान ली गई केवलज्ञान के द्वारा, तब फिर कुछ अज्ञात न रहा, क्योंकि पर्यायों से भिन्न द्रव्य कुछ नहीं है । पर्याय जान लिया तो द्रव्य तो अपने आप ही जान लिया गया समझिये ।

समाधान—फिर तो शंका क्या है ? यह तो समाधान में मदद दे रहा । तो ऐसा है कि समस्त पर्यायों के जान लेने पर कुछ भी अज्ञात नहीं रहता, क्योंकि पर्यायों से भिन्न द्रव्य नहीं है तो लो फिर तो सूत्र में द्रव्य ग्रहण करना ही न चाहिए । सिर्फ यह कहा जाये कि केवलज्ञान सब पर्यायों को जानता है तो सब कुछ आ गया । तो सूत्र में द्रव्य शब्द का ग्रहण अनर्थक हो जायेगा । पर आचार्य स्वामी ने सूत्र में द्रव्य शब्द दिया है । तो इससे ही सिद्ध होता है कि यहाँ तत्पुरुष समास न करना, किन्तु द्वन्द्व समास करना चाहिए, याने केवलज्ञान समस्त द्रव्यों को और समस्त पर्यायों को जानता है । शंकाकार कहता है कि इसमें द्वन्द्व समास भी कर दें फिर भी द्रव्य का ग्रहण करना अनर्थक है, क्योंकि पर्याय से भिन्न द्रव्य कुछ नहीं उपलब्ध होता । इसके समाधान में कहते हैं कि यह दोष न देना, क्योंकि द्रव्य और पर्याय यद्यपि एक सत् हैं, पर संज्ञा लक्षण आदिक भेदों से

उनमें भेद की उपपत्ति होती है ।

सूत्र में सर्व शब्द देने की सार्थकता—अब शंकाकार कहता है कि चलो सब शब्दों का अर्थ ठीक निकला, मगर सूत्र में 'सर्व' शब्द का देना बिल्कुल अनर्थक है, क्योंकि जब बहुवचन शब्द कह दिया—द्रव्यपर्यायेषु केवलस्य, तो द्रव्यपर्यायेषु ऐसा बहुवचनान्त जब शब्द आ गया तो बहुवचन का अर्थ है सब, बहुत । तो फिर सर्व शब्द सूत्र में देने की क्या जरूरत है? इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि द्रव्यपर्यायेषु ऐसा बहुवचन कहने पर अर्थ तो लग जायेंगे अनेक, लेकिन निर्विशेष का याने कुछ भी शेष न बचे, समस्त आ जाये, ऐसा यहाँ भाव है कि लोक और अलोक इन तीन कालों में रहने वाली अनन्त पर्यायें सब कुछ केवलज्ञान के विषय हैं ऐसा बताने के लिए यहाँ सर्व शब्द दिया है और इससे यह भी ध्वनित होता है कि जितना लोक है, समस्त पर्यायें हैं, अनन्तानन्त हैं, उतनी ही अगर और भी होवें तो उनको भी जानने की सामर्थ्य है केवलज्ञान में । यह भी शब्दों से सिद्ध होता है । इस प्रकार केवलज्ञान के विषय में यह युक्त ही कहा गया सूत्र में कि केवलज्ञान का सर्व द्रव्य और सर्व पर्यायों में विषय का नियम है । यहाँ तक मति आदिक ज्ञानों के विषय का निबन्ध बताया । अब इतना बताने पर भी यह ज्ञात नहीं हो सकता कि एक आत्मा में ज्ञान एक साथ कितने हो सकते है? सो अब इस विषय को स्पष्ट करने के लिए कहते हैं ।

सूत्र 30

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्य: ।।३०।।

एक जीव में एक साथ कितने ज्ञान हो सकने की संभवता का प्रतिपादन—एक आत्मा में एक साथ एक से लेकर चार पर्यन्त ज्ञान लगा लेना चाहिए, याने किसी आत्मा में एक ही ज्ञान होता है तो वह केवलज्ञान ही होता है, दूसरा नहीं । किसी आत्मा में दो ज्ञान हों तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो ज्ञान होंगे । किसी आत्मा में तीन ज्ञान होते हैं, तो मति, श्रुत, अवधि—ये तीन होंगे या किसी महामुनि के मति, श्रुत, मन:पर्यय ये तीन होंगे । जिस आत्मा के चार ज्ञान होते हैं उसके याने मुनिराज के मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय—यें चार ज्ञान होंगे । ५ ज्ञान एक साथ नहीं हो सकते । इसका कारण यह है कि चार ज्ञान तो क्षायोपशमिक हैं और केवलज्ञान क्षायिक है । जहाँ क्षायिक ज्ञान होता है वहाँ उस बात का क्षायोपशमिक भाव नहीं रह सकता । इस सूत्र में जो एकादीनि शब्द कहा है उसमें बहुत रहस्य गर्भित है । जैसे एक शब्द का अर्थ क्या है? पहले यह ही विचारणीय हो जाता है, क्योंकि लोक में एक शब्द की अनेक अर्थों में प्रसिद्धि है । कहीं तो एक से संख्या अर्थ लिया जाता जैसे—एक, दो, तीन आदिक । कहीं एक शब्द का अर्थ भिन्न माना जाता, जैसे व्याकरण या न्याय आदिक में बहुत में वर्णन आता कि एक आचार्य का यह कहना है, एक का यह कहना है, तो मायने भिन्न-भिन्न हो गए । अन्य आचार्य का यह कहना, अन्य आचार्य का यह कहना, तो कहीं एक का अर्थ अन्य भी होता है । कहीं एक का अर्थ असहाय होता, मायने जो स्वयं समर्थ है, जिसको मृत्यु की सहायता की जरूरत नहीं है ऐसा अर्थ होता है । जैसे वे एक ही विचरते रहते हैं, अकेले ही घूमते रहते हैं । कहीं एक शब्द का अर्थ होता है प्राथम्य मायने प्रथम बार ही होने वाला या पहले नम्बर में आया हुआ ।

जैसे कोई आया हो नया-नया आदमी तो कहते हैं कि इसका तो एक ही आगमन है मायने प्रथम ही आना हुआ है । तो कहीं एक शब्द का अर्थ प्रथम भी होता है । कहीं एक शब्द का प्रधान अर्थ होता है । यह तो एक ही है याने यह ही प्रधान है अथवा जैसे कहते कि वह राजा एक के द्वारा मारी गई सेना की फिर से रचना कर रहा है, तो यहाँ एक का अर्थ प्रधान हो गया । किसी खास प्रधान के द्वारा मारी गई सेना थी । तो इन एक के अनेक अर्थों में से कौनसा अर्थ लेना चाहिए? तो यहाँ संख्या का भी अर्थ सम्भव हो सकता है । उससे भी सूत्र का सही अर्थ लिया जायेगा । जैसे एक को आदि लेकर चार पर्यन्त ज्ञान लगा लेना चाहिए याने एक भी हो, दो भी हो, तीन भी हो, चार भी हो । एक का असहाय अर्थ भी लिया जा सकता । उस एक को आदि लेकर मायने उस असहाय समर्थ केवलज्ञान को आदि लेकर जो असहाय ज्ञान हुआ उसको आदि लेकर चार ज्ञान हो सकते हैं । असहाय ज्ञान केवलज्ञान होता । तो केवलज्ञान यों एक होता । दो होते तो मति, श्रुत आदिक रूप से लेते, और एक का अर्थ प्रत्यक्ष भी लिया जा सकता याने प्रथम ही प्रथम जो होता हो याने केवलज्ञान उसको आदिका कर चार पर्यन्त लगा लेना चाहिए । मायने एक भी होता, दो भी होते, तीन भी होते और चार भी होते ।

आदि शब्द का अर्थ अवयव या सामीप्य करने पर मतिश्रूत आदि रूप से चार तक याने एक से लेकर चार तक लगा लेने का भाव—यहां आदि शब्द के अर्थ अनेक होते हैं, उनमें से आदि का अर्थ अवयव करने पर परोक्ष का अवयव मतिज्ञान लिया जा सकता है, उसके साथ श्रुत होता ही है । यहाँ कोई शंका कर सकता है कि एक का अवयव अर्थ जब लिया तो परोक्ष का आदि अवयव ज्ञान तो मतिज्ञान है तो क्या मतिज्ञान भी अकेला होता है? तो ऐसी शंका न करना, क्योंकि जहाँ मति होगा वहाँ श्रुत होगा ही और जहाँ श्रुत होगा वहाँ मति होगा ही । याने जीवों के अनादि से मति और श्रुत चले आये हैं । केवलज्ञान होने पर ही मति श्रुत मिटते हैं । तो मति जहाँ ग्रहण किया वहाँ उसके साथ श्रुत ले लिया जायेगा या आदि शब्द का अर्थ यहाँ किया जाये समीप, क्योंकि आदि शब्द के भी अनेक अर्थ होते हैं । कहीं आदि का अर्थ अवयव है।

जैसे कहते हैं कि वह ऋग् आदिक का अध्ययन करता है । ऋग्वेद का एक अङ्ग है मायने ऋग्वेद के अवयव का अध्ययन करता है । कहीं व्यवस्था अर्थ होता है आदि का । जैसे ब्राह्मण आदिक चार वर्ण होते हैं तो यह ब्राह्मण शब्द व्यवस्था आदिक की सूचना देता है । कही आदि का प्रकार अर्थ भी होता । जैसे सर्प आदिक से दूर रहना चाहिए तो आदिक से मतलब सर्प और सर्प जैसे ही अन्य जीव-जंतुवों से अलग रहना चाहिए । आदि का अर्थ कहीं समीप भी होता जैसे नद्यादि क्षेत्र अर्थात् नदी है समीप मे जिसके ऐसा क्षेत्र । तो इसमें आदि शब्द से समीप अर्थ लिया । तो एक का आदि मायने समीप वाला कौन हुआ? श्रुतज्ञान ।

यहां भी कोई कह सकता है कि तब तो इसका अर्थ श्रुतज्ञान ही लिया जायेगा । मतिज्ञान अलग हो गया । सो यह बात यों नहीं कि चाहे मति का नाम लो, चाहे श्रुत का नाम लो, दोनों ही एक जीव के छद्मस्थों के होते हैं । अथवा यहाँ आदि का अर्थ अवयव ले लो । एक का आदि, एक का अर्थ हो गया परोक्ष, क्योंकि दो प्रकार के ज्ञान कहे गए-परोक्ष और प्रत्यक्ष, तो परोक्ष का आदि मायने परोक्ष का अवयव मतिज्ञान । तो इस तरह एकादीनि शब्द में अनेक अर्थ बसे हुए हैं । यहाँ एक शब्द से जब मति या श्रुत का संकेत होता है तो यह

शंका न रखनी कि यह तो एक अकेला किसी के होता ही नहीं, फिर इस एक का अर्थ मतिज्ञान कैसे ले लिया जाये? यह शंका यों न रखना कि यहाँ एक शब्द से जब मति का संकेत है और उसके साथ भूत का है तो यह एक शब्द संख्यावाची न रहा । मति, श्रुत आदिक चार पर्यन्त लगाना चाहिए । तो चार पर्यन्त में यह ध्वनित हो गया कि एक से लेकर चार तक । जब एक शब्द का अर्थ अवयव रूप लिया जाये तो यहाँ एक शब्द संख्यावाची न रहा ।

संख्यावाची एक शब्द मानने पर सुगम स्पष्ट अर्थ—संख्यावाची एक-एक शब्द मानने पर तो अर्थ होगा—एक से लेकर चार तक 'एकादीनि आचतुर्भ्यं:' एक से लेकर चार पर्यंत, तो कहाँ से लेकर? जहाँ से शुरू होती हो संख्या । तो आचतुर्भ्यं: इससे ही यह अर्थ बन गया कि एक से लेकर चार पर्यंत अथवा जब एक को संख्यावाची मानेंगे तो मति, श्रुत आदिक किसी का भी संकेत न होगा । तब यह होगा कि एक आदिक चार पर्यंत एक भी हो, दो भी हो, तीन भी हो और चार भी हो । इससे सूत्र का अर्थ हुआ कि एक आत्मा में एक से लेकर चार पर्यंत ज्ञान का विभाग करना चाहिए । अब एक होता है तो केवलज्ञान, क्योंकि वह असहाय ज्ञान है अन्य ज्ञान क्षयोपशमनिमित्तक हैं । केवलज्ञान के साथ नैमित्तिक ज्ञान नहीं हो सकता ।

केवलज्ञान के साथ अन्य अधूरे विकासों के न होने के सिद्धान्त में की जा सकने वाली कुछ शंकाओं का समाधान—यहां कोई यह शंका रख सकता है कि जब एक बड़ा ज्ञान हो गया तो छोटे ज्ञान तो होंगे हीं । उनका अभाव क्यों बताया जा रहा? अथवा जैसे जब सूर्य का उदय है तो सूर्य की प्रभा से नक्षत्रों की प्रभा दब गयी, मगर नक्षत्र तो अपनी जगह अपना व्यापार कर ही रहे हैं, ऐसे ही जब केवलज्ञान हो गया, तो छोटे-छोटे मति, श्रुत आदिक ज्ञान तो होंगे ही । भले ही केवलज्ञान महान् ज्ञान है और उससे आविभूत हो गए, किन्तु अपने प्रयोजन से कुछ व्यापार तो भी करते ही रहते होंगे । तब केवलीभगवान में क्षायोपशमिक ज्ञानों का अभाव नहीं कहा जा सकता ।

इस शंका का समाधान यह है कि क्षायिक ज्ञान समस्त ज्ञानावरण के क्षय से हुआ है । वहाँ ज्ञानावरण की कोई प्रकृति न रही । तो जब ज्ञानावरण प्रकृति ही नहीं है तो क्षयोपशम किसका? फिर क्षायोपशमिक ज्ञान का क्या मतलब? क्षायोपशमिक ज्ञान सम्भव नहीं हो सकता । जहाँ सर्व शुद्धि प्राप्त हो गयी उस साधक के प्रादेशिक अशुद्धि नहीं रह सकती । यहाँ शंकाकार यह कह सकेगा कि आगम में भी तो बताया है कि पञ्चेन्द्रिय जीव असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय से लेकर अयोगकेवली पर्यंत होते है । जब अयोगकेवली, सयोगकेवली पंचेन्द्रिय है, इन्द्रियवान हैं तो उनके कार्यज्ञान भी होना चाहिए । तो यह शंका यों युक्त नहीं है कि शंका रखने वाले लोगों ने आगम के अर्थ का सही बोध नहीं कर पाया । आगम में सयोगकेवली अरहंत भगवान और अयोगकेवली अरहंतदेव को पञ्चेन्द्रिय जो कहा है सो द्रव्येन्द्रिय की अपेक्षा से कहा गया है भावेन्द्रिय की अपेक्षा से नहीं । यदि भावेन्द्रिय की दृष्टि से प्रभु पंचेन्द्रिय होते, भावेन्द्रिय कहते हैं ज्ञान, बुद्धि विचार को, अगर यह बात होती तो वहाँ केवलज्ञान भी न रहता या लौट जाता । केवलज्ञान हो ही न सकता था । इससे यह सिद्ध हुआ कि भाई एक आत्मा में एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान, दो ज्ञान हैं तो मति, श्रुत, कहीं तीन ज्ञान होते तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान

अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, इस तरह तीन होते । कहीं चार ज्ञान होते—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान । याने ज्ञान एक आत्मा में एक साथ कभी सम्भव ही नहीं है ।

प्रमाणविवरण के पश्चात् कुज्ञान और नयों का वर्णन आगे किया जाने का संकेत—इस अध्याय में अब तक 'प्रमाणनयैरधिगम:' में कहे गए प्रमाण की व्याख्या चली वस्तुस्वरूप का अधिगम होता है प्रमाण के द्वारा और वह प्रमाण है ५ ज्ञानों रूप—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान । और इन ५ ज्ञानों से पदार्थ का अधिगम होता है । तो उन ५ ज्ञानों का स्वरूप विषय स्वामी आदिक सभी प्रकार का विवरण करके वस्तुस्वरूप की जानकारी के उपायभूत प्रमाण का भली प्रकार वर्णन किया गया है ।

अब इसके बाद नयों का वर्णन किया जाना चाहिए, क्योंकि संकल्प यही किया था कि प्रमाण और नयों से वस्तुस्वरूप का अधिगम होता है । तो जब प्रमाण का वर्णन हो चुका तब नयों का वर्णन करना चाहिए । तो अब नयों का वर्णन किया जायेगा, पर बीच में एक थोड़ासा यह भी अनुषंग से दिखा दिया जाना सूत्रकार को इष्ट है कि जिन ५ ज्ञानों का जिक्र किया यह सब सम्यग्ज्ञान है । कहीं ज्ञान विपर्यय भी हुआ करते हैं मगर पांचों ज्ञान विपरीत नहीं हो सकते । मनःपर्ययज्ञान तो संयमी सम्यग्दृष्टि के ही होता, केवलज्ञान भगवान के ही होता । इसका तो सवाल ही नहीं कि यह विपरीत हो, पर शेष जो मति, श्रुत, अवधिज्ञान हैं ये विपरीत हो सकते हैं । सो उसके सम्बन्ध में आगे के सूत्र में वर्णन करेंगे । सो प्रसंगवश अब कुमति, कुश्रुत व कुअवधिज्ञान का वर्णन चलेगा । तदनंतर नयों का वर्णन आवेगा ।

।। मोक्षशास्त्र प्रवचन नवम भाग समाप्त ।।